शब्द

कविता-संग्रह



वाणी प्रकाशन

दिल्ली-110007

शब्द

त्रिलोचन

श्री जुबली नागरी भण्डार

स्टेशन रोड, बीकानेर

वाणी प्रकाशन
61 एफ कमलानगर दिल्ली 110007
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण 1980
त्रिलोचन शास्त्री
मूल्य 18 00 रुपये

शान प्रिंटर्स
रोहतासनगर शाहदरा दिल्ली 32
द्वारा मुद्रित

SHABD (collection of poems)
by Trilochan

अग्रज कवि

श्री केदारनाथ अग्रवाल को

ज्ञप्ति

इस सकलन की कविताओं का रचनाकाल 1962 की पहली जनवरी से 10 अप्रैल तक है, इसी कारण प्रत्येक रचना के साथ तिथि का अकन मुझे अनावश्यक जान पड़ा। प्रस्तुत सकलन की कुछ ही कविताएँ पत्र पत्रिकाओं मे पूवप्रकाशित हैं अधिकतर यहाँ पहले पहल प्रकाशित हो रही हैं।

त्रिलोचन

उर्दू विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली 110007

क्रम

दुखागार है जगत, फिर भी सुख-सपना का 1
अजन आँजे हुए आँख मे जो चलते हैं
अपन पथ पर वे सहास मुख यदि पलते हैं
मधुर कल्पना मे पलने पर तो अपना का
अपनापन इसका कारण है, उन मना का
अवलबन है जो पर को हर दम खलत हैं—
बचारे ईर्ष्या की ज्वाला म जलत हैं—
गीत जगते, उन्हें यहाँ विश्वास जनो का

अपनापन ही देखा करती है जो आँखें
उनमें ज्योति और ही ऐसी आ जाती है
जिसके पानी से दुनिया सारी की सारी
रँग जाती है और कल्पना खोले पाँखें
नई उडानें भर कर यहाँ वहाँ जाती है
जहाँ जहाँ छवि बैठी है आकर्षणकारी

2 क्या जान क्या जी मे आया तुम्हे बुलाया
मैं न, अपनी लहरा मे तुम को लहरात
पाया, फिर अपन को रोक न पाई, आत-
जाते लोगो से तुम अलग लगे, अलगाया
मैं न आवाहन से अपन फिर अपनाया
आँखो से, वाणी स, मन से, आते जात
तुम को और और अपनाया, गात गाते
जस सुर अपना बनता है वसे पाया

वासती सध्या की नारगी रगीनी
वही आज भी वातावरण बना जाती है
जब जब सूने मे होती हूँ, मन की बातें
केवल मन सुनता है, अब भी भीनी भीनी
रम वषा होती है कौन मना जाती है—
मेरे रूठे दिन पर हँस देती है रातें

3

बहती लहरों से यदि कोई प्यार करे तो
कैसे करे, करे तो संग संग बहना है
उसको भी—अस्थिर से अस्थिर हो रहना है
सदा सदा के लिए किसी दिन कहीं भरे तो
झरे फूल सा बह जाना है—हरे भरे तो
दूर दूर वाले रहते हैं, क्या कहना है,
तट वालों को—प्राय प्रखर वेग सहना है
धारा का, निंदित होना है कहीं डरे तो

बहती लहरों को ही मैंने प्यार किया है
फिर भी, क्या जाने क्यों, शायद नादानी हो
यह हिसाबिया के हिसाब से, मैंने अपना
जीवन बहती लहरों पर ही वार दिया है
पहली ही उमग मे यदि मन में पानी हो
तो सत्य ही प्रमाणित होगा देखा सपना

4

धूल चरण से जो उडती है उडा करेगी
जब तक पथ है और पथिक हैं, सधे चरण से
उठी धूल चदन बन जाएगी, अनुगामी
उसे रमाएँगे, पथधारा मुडा करेगी
उस गतिधारा के मोडो पर, जुडा करेगी
जनतरगिणी अपने नूतन रग दिखाती
और महत्त्वाकाक्षाओ के सेतु सँभाले
आवर्तों मे दपभावना बुडा करेगी

जब तक पथ है पथिक तभी तक किंतु चरण का
विचरण कब रुकने वाला है पवत घाटी
नदी सिंधु, कातार मौन साक्षी है गति के
भूतल पर ऊपर रवि-शशि-तारक परिपाटी
देख रही है—दो पैरो के लिए वरण का
रोध नहीं है और कहीं भय नहीं मरण का

5

बीन बजाने वाली, मैं ने जो सुर साधा
वह तेरे ही एक इशारे का बल पा कर
और नहीं तो मुझ में क्या था मैं गा गा कर
गली गली में भटक चुका था, केवल बाधा
दिखलाई देती थी मुझको जब आराधा
तुझ को मन का सुमन चढ़ा कर तब तो आकर
सुर के खुल खुल चले भाव पर भाव बता कर—
ऐसे जीवन के प्रश्नों की हुई समाधा

देखा वह तेरा ही स्मित है जो इस जग के
जीवन का आनंद बना है, चितवन तेरी
ही है जो निगूढ़ तम का छेदन करती है
घनीनिकायों में स्थित रह कर सब के मग के
अहोरात्र, क्षत स्पंदन में करुणा मेरी
तेरी ही बन कर भय का भेदन करती है

6

काल महासागर की लहरों पर मैं ठहरा,
आगे-पीछे अगल बगल सब घूम घूम कर
देख रहा हूँ—जलशिखरों को झूम झूम कर
उठते, टकराते, लय होते कितना गहरा
तल है कोई कैसे जाने, साहस पहरा
देता है विश्वास अकेला रम रम कर
अटल उनिनीया 'के तट से लूम लूम कर
लहराता है हो जाता है आप इकहरा

उन लहरों पर हूँ जिनके तल में भावाएँ
कितनी बैठ चुकी हैं कितने सुंदर सपने
बिला चुके हैं पानी बन कर, सत्य कभी का
असत हो चुका है अब नई नई आशाएँ
दिग्दिगंत आकाश सिंधु वसुधा पर अपने
अपने रूप सँवार रही हैं, भाव अभी का

कोलाहल का बीजारोपण कोलाहल को 7
जन्म दिया करता है यदि संगीत के लिए
कोई कोलाहल को पकडे, जीत के लिए
दुदुंभि का निर्घोष करे तो इससे छल को
प्रबल समर्थन मिल सकता है लेकिन कल को
क्या होगा—मन का एकाकी गीत के लिए
कोलाहल में ठहरेगा भी ? मीत के लिए
बरसों बाट जोहते हैं विस्मृत कर पल को

देखी हैं वे मौन विचरने वाली ध्वनियाँ
जो एकांत क्षणों में जाने कहाँ कहाँ से
चल चल कर इन चिनाकुल आँखों के आगे
आ कर ठहर ठहर जाती हैं, ये वे मणियाँ
हैं जो कभी नहीं मिलती हैं यहाँ वहाँ से
अनायास, जिसने पाया उसके दिन जागे

8 कल गुलाब जो खिला हुआ था, खेल रहा था
वायु-तरंगों से अपनी छवि में लहराता
और फरहरा अपने रंगों का फहराता
उपवन में, निःशब्द हँसी में झेल रहा था
दाव पेंच जीवन के, यों ही ठेल रहा था
गन्धहीनता को सुगंध से, फिर छहराता
अपनी प्रभा व्योम में, नील वर्ण गहराता
और और भी, आसपास में फैल रहा था

गति किसकी है ताल ताल पर, कहाँ गया वह,
आज वृंत सूना है सूनी है यह क्यारी
जो कल भरी भरी लगती थी, अब काँटे का
आच्छादन पहने इस गुलाब की टहनी ही रह
गई, कह गई बिन बोले जैसे—आभारी
हूँ मैं, पाया है मैंने अपने-बाँटे का

9

हृदय हृदय के भाव-वसन से सजने वाले
प्रिय पाषाण, सीढ़ियाँ चढ़ कर पास तुम्हारे
आया हूँ मैं, क्या जाने क्यों ! जो बेचारे
अपना दुखड़ा ले आते हैं, भजन वाले
शत स्वर में दुहराते हैं, तजने वाले
जग में तुम उनके होते हो अथवा हारे
मन को और मगन देते हो चुप्पी मारे—
क्या क्या भय लगाते होंगे भजने वाले

अपने अपने आराधन में आने वाली
असफलताओं का, तुमको तो पता न होगा
रंच मात्र भी, फिर भी तुमको अन्तर्यामी
कह कह कर गा जाते होंगे, ज्ञान स्वामी
मोह थाह में—क्या क्या फँसे फँसे भोगा
भोग रहे हैं, दुख निवृत्त करो आगामी

10

जहाँ जहाँ संधान किया जीवन के पथ का
वहाँ वहाँ देखा, अब पथ ही पड़ा हुआ है
जीवन आगे चला गया है खड़ा हुआ है
इसी तरह इतिहास विश्व का, सबके अथ का
इति के साथ अविबंधन है, केवल रथ का
रथी के बिना अथ नहीं है खड़ा हुआ है
संसृति का संग्राम सभी का—बढ़ा हुआ है
जीवन अपने बल से, पोषित अपने गथ का,

अपनों का ही सदा रक्षणावेक्षण पा कर
अपने ही विकास की खरस्रोता धारा में
लहरें लेता हुआ, तरंगों में उमंग से
आगे बढ़ता हुआ, कभी कुछ पीछे जा कर
फिर आगे बढ़ता, दिनकर हिमकर-तारा में
आत्मपरीक्षण करता प्रतिपद नये ढंग से

11

दुख से दबे हुए मानव, आ आ, मैं ले लू
तेरा सब दुख, तू हल्का हो कर सिर तानें
आसमान मे, इस दुनिया को अपनी माने
जिस को अपनी नही मानता किस को दे लू
तेरा ईर्ष्या - द्वेष - कपट - पाखड—उसे ले
और डाल दू तुरत महासागर के थान,
वही पचा सकता है उस को मेरे जाने,
कोई और नही मैं अपनी नैया खे लू

इस दुनिया के महासागरो की तरग मे
प्रतिपल आदोलित - हिल्लोलित होता होता,
क्या जाने कोई क्षण आए और किनारे
मैं जा लगू, अपर पर—चाहे किसी ढग मे
रहूँ—गान ही होंगे, मेरे स्वर का सोता
नही सूखने का, विधि अपनी सी कर हारे

12

देख रहा हूँ गगा के उस पार धूल की
धारा बहती चली जा रही है, चढ चढ कर
वायु तरगा पर, अपने बल से बढ बढ कर
धूसर करती हुई क्षितिज को, वक्ष - मूल की
शोभा हरित सस्य की निखरी, विषम कूल की
अखिल छू यना हरती है छवि से मढ मढ कर
मानव - आकृतिया नि स्वन गति से पढ पढ कर
जीवन - मग्न कहानी देती धूल - फूल की

मैं इस पार नही हूँ आँखें उसी पार को
दौड दौड जाती हैं लहर लहर से हो कर
तट की सतत वक्र रेखाओ का अनुधावन
करती हुई धूल - धारा को कृषि उभार को,
पुन क्षितिज की वक्षसीमरेखा को टो कर
नील व्योम मे करती है अनुभव सभावन

एक समय आता है जब जीवन में स्मृतियाँ 13
ही रह जाती हैं, पौरुष चुपचाप किनारे
कहीं लुढक जाता है, एकाकी मनमारे
जीवन ताका करता है, पहले की कृतियाँ
छायापथ मे मॅडलाती हैं, धारक धृतियाँ
कौंध कौंध कर छिप जाती हैं—किसे पुकारे,
ऐसे मे कोई जो आशा धरे उबारे,
कहाँ डूबते को जिसकी खोई हैं सुतियाँ

एक समय आता है जब स्मृतियाँ भी पथ के
किसी किनारे छोड व्यक्ति को, क्षितिज वलय के
सघन कुहासे में रलमिल कर खो जाती हैं
कभी किसी दिन, मोह त्याग कर जीवन - रथ के
पाँव पयाद चल देते हैं, पास प्रलय के
बलाकृष्ट, सज्ञाएँ थक कर सो जाती हैं

14 अपना ही दुख मेरा होता तो क्या होता,
कैसे हृदय हृदय में बाजे बजने लगते
उसमे अनुघातो से कैसा अनुभव जगते
और और लोगो के, कैसे मन का सोता
फूट फूट कर देश काल के कूल भिगोता
चल पडता, कस रस की धारा में पगते
एक हृदय की—जान बूझ कर कैसे ठगते
कस पर का अनुभव कोई कथा ढोता

पथचारी आँखो के आँसू राह चलते
मैं चुपके से चुन लेता हूँ जैसे माली
फूल चुना करता है—फूलो का उतारना,
कितना शात काम है, इसी शान्ति से बनते
हैं कठो के हार, भलक कुछ कुछ जो पा ली
मैं ने, उस के लिए नयन हैं या निहारना

दुश्चिंताओं को थोड़ा विराम मिलता है, 15
भाव नहीं तो फिर अभाव भी इन आँखों को
नहीं दीखता अंधकार में जो लाखों को
दोहाता है वह दिन संग संग हिलता है,
उसकी गति को देख देख कर ही मिलता है
दुख का भार हृदय से जो अपनी साखों को
भार छोड़ कर डुबा चुका है वह पाखों को
पा कर भी अपंख है कब खुल कर खिलता है

अंधकार से मुझे भय नहीं है, क्या भय से
रक्षा होगी, रक्षा, किसकी रक्षा, कैसे,
चिर यात्री प्राणों को कभी चले जाना है
मुक्त मार्ग पर विश्वासों के महदाश्रय से
विश्व प्राणमय श्वास ग्रहण करता है, जैसे
रजनीगंधा ने अपना वितान ताना है

16 स्निग्ध कूट कौशल है जो तुम मुझे देख कर
जलभभा में थोड़ा सा मुसका देती हो
मेरे ऊपर—क्या विपत्ति में रस लेती हो
ऐसा रस दुर्लभ होता है, इसे लेख कर
कौन छोड़ना चाहेगा, जो मीन मेख कर
ठहर गए वे मरें, दूसरे—जो खेती हो
तो अपनी हो और परायों की रेती हो—
इसके विश्वासी हैं, समझ पूछ पेख कर

जीवन का रहस्य ऐसा ही है, जीवन का
जीवन के प्रति ऐसा ही व्यवहार उजागर
होता आया है समीपता में भी दूरी
झनक मारती है अभिन्नता में भी मन का
भिन्न भाव है कभी स्वगत है, कभी मुखागर—
जो है द्वंद्वातीत कहानी है वह पूरी

उड़ते हैं पारावत जमी हुई बदली के 17
नीचे नीचे लगता है जैसे बादल के
छोटे छोटे टुकड़े समाकार ये चल के
अपनी चाल दिखाते हैं उस ओर गली के
ऊपर जो आकाश झुका है—भ्रमर कली के
ऊपर का लगता है भरा उजाला छलके
जैसे दिक्-छोरों से कलश गगन का ढलके—
घन ये घूँघट-से लगते हैं किसी भली के

हवा भूमि से आसमान तक आती जाती
है बेरोकटोक, बेलों से उलझ रही है,
पौधों से परिहास कर रही है, पेड़ों से
छेड़छाड़ कर रही है, यहाँ पंख फुनाती
है बैठी चिड़िया के, लेकर गंध वही है
खिले खिले फूलों के गाँवों से खेड़ों से

18 जल के हिल जाने पर जैसे तल की छाया
हिलने लगती है वैसे ही मेरे मन के
हिल जाने पर मेरा छायापुरुष गगन के
प्रभा लोक में हिलने लगता है समझाया
तुम ने मुझे मर्म जीवन का—मैं ने पाया
तुम जल हो मैं निहित बिंब हूँ उड़ते घन के
प्रतिबिंबों पर सुस्थिर, तार हृदय के खनके
साँस साँस से जीवन जग कर आगे आया

छाया छाया छाया छाया—जब भी देखा
केवल छाया दिखी, रूप किस ओर खो गया
अपनी चमक दिखा कर, कहाँ गया वह आत्मा
जिस की सब तलाश करते हैं, जिस की रेखा
नहीं बनी लेकिन सत्ता का शोर हो गया
सारे जग में, आत्मा ही तो है परमात्मा

जाड़े का दिन धूप खिली है आसमान की 19
नील लता पर, प्राची में, थोड़ा सा ऊपर
सूरज उठ कर चला गया है, नीचे भू पर
इधर उधर ज्योति ही ज्योति है स्नान ध्यान की
धुन में लोग घाट पर आते हैं, विहान की
वेला में मालिश करते हैं, या ही भ्रू पर
बल दे कर रोशनी झेलते हैं, बाजू पर
दृष्टि डालते हैं, गुनते हैं बात शान की

प्रिय लगती है बहुत, घमौनी, घाम देख कर
लोग कहीं जमते हैं, गाएँ और बकरियाँ
खड़ी धूप में मौज लिया करती हैं सर्दी
इसी तरह जाती है घर से मीन मेख कर
आती हैं महिलाएँ, आती हैं सुंदरियाँ,
कुत्ते करते रहते । हैं आवारागर्दी

20 नाव चल रही है चढ़ान पर, डाँड चलाता
चला जा रहा है मल्लाह नाव भारी है,
बैठे हैं विदेश के यात्री, तैयारी है,
कई कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं एक घुमाता
है अपना कैमरा—किनारे ताने छाता
धूप बचाती हुई एक ही तो नारी है,
स्वस्थ, सलोन, आकर्षक सब हैं प्यारी है
काशी की छवि इन्हें ध्यान भी क्या कुछ आता

है तट के निवासियों का, उनके सुख-दुख का
इन पर कुछ प्रभाव पड़ता है या न केवल
दृश्य देख कर ही प्रसन्न होने आते हैं
अपने जीवन की धारा में—मानव युग का
ध्यान कहाँ तक करें मनोरंजन का साधन
इनको भाता है जिस की सुधि न जाने हैं

नीछे हरियाली है, हरियाली मे पीले 21
पीले फूलो वाली सरसो सजी सजाई
लहराती है मधुर गध से बसी बसाई
हवा सरसराती है मेरे आगे नीले
आसमान की छाया गगा मे है नीले
तट से कुछ हट कर हूं, आभा जल पर छाई
रामनगर की बिजली की, खँभिया उतराई
धारा पर जम सोने की, शोभा ढीले

आवाजें दूरियाँ पार कर आसमान की
कानो को अपना वक्तव्य सुना जाती हैं
अनचाहे भी, धारा पर कल कल ध्वनि करती
हुई नाव चढती है, अपनी टेक तान की
गाता है मल्लाह, लहरियाँ बढ आती हैं,
जैसे जसे पुरवाई मे लहर उभरती

22 बादल छाए है सूरज भी ढका ढका ही
अस्ताचल को जा पहुंचा जो क्षण भर पहले
कपोताभ बादल थे उनमे कही सुनहले
कही रुपहले रग आ गए आवाजाही
कूजन करते हुए खगो की है मनचाही
सध्या आज नही है कोई कुछ भी कह ले,
गभीरता घिरी है ऐसे मे जी बहले
कैसे जिस ने लाभ के लिए कर ली पाही

उस की क्या स्थिति होगी यदि हानि ही हानि हो
सारे जतन उपाय एक भी काम न आएँ,
आँसू बहुत आयें, अगर बदली छाई है
तो आभा की चाहे जितनी बडी ग्लानि हो,
शेष प्राणियो म जग कर नवीन काक्षाएँ
हर्षित जगाएँगी—ऐसी बेला आई है.

25

बेन किनारे की चट्टानें, बहती धारा,
दोनों का स्वभाव मुझको समान लगता है—
सरस, कठोर भाव से भर जीवन जगता है
बांदा के नागरिक हृदय में, मैंने प्यारा
उसे हर तरह से पाया है उसे सहारा
अगर चाहिए तो अपनों का, मन डगता है
अपने अभिप्रायाव्रत से, अंतर पगता है
अपनेपन से जिस पर उसने तन-मन वारा

अस्ताचलगामी किरणें, केन की लहरियाँ,
मिलजुल कर नव गान गा रही थी कल स्वन से
भावों में तल्लीन, उसे सुनने को जैसे
शांत समीर हो गया था, अदृश्य अप्सरियाँ
नृत्यशील थी नीलांबर में अपने मन से,
नीलांचल ही दिखता था हम भूले ऐसे

26

सूरज का प्रकाश पड़ता है नए मुखों पर,
आँखें उन का चित्र उतार लिया करती हैं
अपने आप, बताने में यह सब करती हैं—
क्या जाने क्या शब्द अर्थ हो, प्राप्त सुखों पर
कोई डीठ गड़ा दे, दुनिया भले दुखों पर
ध्यान न दे पर सुख की ईर्ष्या में मरती है
आठों याम और लंबी साँसें भरती है—
मैंने दृश्य यही देखे हैं सभी रुखों पर

नीले आसमान में सब ने सीस उठाए
नन्ही दूब, विशाल पेड़ अथवा पहाड़ हो,
चींटी हो गड़ा हो, साँभर हो या हाथी
या मानव हो कोई भी हो—सभी झुठाए
हुए मरण को हैं मृदु भाषण हो दहाड़ हो,
सभी चाहते हैं अपने जीवन के साथी

लौट रही है धरा, निद्रातुर रमानाथ हैं, 27
दीनबंधु हैं, हम तीनो ही रात जगे हैं
कवि-सम्मेलन मे—मंच के सब सहज सगे हैं
बँधे हुए साहित्य-सूत्र से और हाथ हैं
जैसे तन मे कुछ बँध ही इधर साथ हैं
स्मृतियो के रिवाड़ चिंतन पर अभी लगे हैं,
बोल तुम्हारे सुनते हैं बेतार, पगे हैं
मन मे पिछले उभयनिष्ठ दिन आत्मगाथ हैं

बाँदा की गलियाँ, सड़कें, चौराहे, मानव,
वृक्ष, लताएँ, घघरवर, वह केन किनारा
चट्टानो के ढोके और मकानो की छवि
आँखो के भीतर फिरती है, मन में नव नव
रंग तरंग उठाते हैं, लहरीली धारा
पकड़े है वह अस्ताचल का प्रतिबिंबित रवि

28 कल्पवासियों की बस्ती जगमगा रही है
बाँस लगा है खंभो का, खंभो के सिर पर
बिजली के लट्टू के फन चम चम चम चम कर
चमका रहे हैं कुटीरो को, जिधर बही है
गंगा उधर पहुँच जाने की गैल गही है
स्नानाभिलाषियो ने कुछ नहा चुके सत्वर
मुड़े कुटीरो को, अधरो पर हैं जप के स्वर,
श्रद्धा की छाती ने हिम की चोट सही है

कुछ कुटीर कुछ छायाकृतियाँ ऊपर तारे,
जहाँ तहाँ बादल के काले काले टुकड़े
आसमान मे चुपके चुपके तर रहे हैं
चलती हुई रेल की खिड़की से हम हारे
हारे नीचे ऊपर देख रहे है, उखड़े
पेड़ सरीखे ध्वनिधारा के साथ बहे हैं-

29

जीवन अब तक सूरज, चाद और तारो की
द्युतिधारा मे इधर या उधर बहते बहते
रोध विरोध चपेट निरतर सहते सहते
जैसे तैसे चला जा रहा है,—हारो की
या जीतो की गणना कौन करे, हारो की
जगह पहाड खडे हैं तन कर, कहते कहते
कहने वाले गए किंतु ये रहते रहते
वही के हुए, बात आ बनी अधिकारो की

जल, स्थल, नभ मे जीवन जहाँ कही होता है,
अडज, पिडज, स्वेदज, उद्भिज—चाहे जड हो
चाहे चेतन, चाहे स्थावर चाहे जगम,
शाक मास आहार जो करे, वह बोता है
नए बीज जीवन के, अधकार हो झड हो,
हिम हो, आँधी हो, सब हैं उस को सुख-सगम

30

गह गृह मे ग्रह की चर्चा है, अष्टग्रही से
लोग भयाकुल हैं सडको पर, चौराहो पर,
नाको पर अड्डो पर भीतर की आहो पर
काबू रख कर बतियाते हैं, ऐसे जो से
जमा हुआ भय बाहर करते हैं, साथी से
कहते हैं—तुमने भी सोचा है ? साहो पर
रको पर भय झलक रहा है, उत्साहो पर
सकट छाया है जो उगा, बढा धरती से

भूमडल भर के भविष्यव्यवसायी दल न
जल स्थल-नभ से महाप्रलय होगा—भाखा है
प्राणी अधप्राण हो गए हैं बस कल की
चिंता उन को अकमण्यता से कर मलन
पर ही विवश कर रही है, जिस ने राखा है
वह क्या कल न रखेगा, ऐसी चिंता छलकी

31 सध्या वैसे ही मुसका कर बिदा हुई है
जैसे कल, परसो या नरसो, यह मुसकाना
भोलेपन का खिला फूल है जो कुम्हलाना
नही जानता है सशय से, किधर छुई है
यहाँ वक्रता की रेखा, दूर ही दुई है
इस से इस के जीवन से, जो ताना बाना
यहाँ बँधा है वह सब का जाना पहचाना
है जिस पर जीवन की दुलभ सुधा चुई है

इस सध्या की छाया मे जो रात ग्रायेगी
वह सध्या से बिलकुल भि न कदापि न होगी,
यहाँ छल नही—भोना मुख छल को क्या जाने
इमी सहेली से तो सारी बात पायगी
रथ के पथ के, कैसा राजा कसा जोगी
मन विश्वासघनी है—ग्रन्य कौन धन माने

32 हवा रोशनी सूरज की, ग्राकाश खुला है
कही बादलो का निशान भी नही सुना है
भरसक सब की ग्राँख बचा कर ग्रभी बुना है
स्वेटर तुमने मेरे लिए ग्रनत धुला है
सूरज के पानी से — पावन रूप तुला है
ग्राँखो के निल मे मैंने दिनरात गुना है—
कौन कौन गुण धन्य हुए हैं जिन्हें चुना है
तुम ने ग्रपने लिए, महक से रूप घुला है

मैं इन ग्राँखो के सुनील जल मे खो जाऊँ,
जी करता है, कोई ढूढे मुझे न पाए,
मेरा होना ही सुगध बन कर दिगत में
जल के ऊपर खिले कज सा हो बो जाऊँ
मैं भी सूक्ष्म तरगें ऐसी ही, उपजाए
प्यार तुम्हारा प्यार, प्यार रह जाए ग्रत म

33

कृष्ण वर्ण मेघों से आच्छादित दिन आया
जैसे वैसे गया उषा को मुसकाने का
समय ही नहीं मिला, महावर रचवाने का
काम रह गया और क्षितिज-मंडल सँवलाया
इतना जितने घन थे आँखों ने यह पाया
संध्या आई और कहीं भी अपनाने का
भाव न पा कर लौट गई जी उफनाने का
कारण अंतर्निहित प्यार है, आश्रय काया

काया है आधार जगत् के संबंधों का,
संबंधों का प्रेरक मन है मन को स्मृतियाँ
क्षण क्षण सिंगारती हैं यही सिंगार रूप की
नई नई रचना करता है, सद्गंधों का
सत्कुसुमों से भाव बँधा है, अच्छी कृतियाँ
चाहक हैं कर्ता के पथ की क्लांति-धूप की

34

वही धूप जो मेरे हाथों को बालों का
छू छू कर इतनी गरमाई ला देती है
जितनी मुझे चाहिए—सूरज की खेती है
लहराती है, चल कर पेड़ों की डालों को
हवा सँभाल नहीं पाती अपनी चालों को
भूम भूम कर उछल उछल कर कर लेती है
अपना तिरस्कार अपने से, फिर सेती है
अस्वीकृत एकांत, छोड़ हँसने वालों का

वही धूप पेड़ों के पत्तों की हरियाली
ओप रही है, कितने रंग निखार रही है
रंग रंग के फूलों में, उड़ती चिड़ियाँ के
रोएँ, डैने चमकाती है जो खुशहाली
चौपायों में है उठ कर ललकार रही है
सुस्ती को, जब तब, दिख गए पवन के भार्ग

कभी कभी लगता है कोई अर्थ नहीं है 35
इस जीवन का, यदि कुछ है तो मार-काट है,
हत्या और आत्महत्या है, लूटपाट है,
बलात्कार है जग में कौन अनर्थ नहीं है,
निराकरण में कोई वहीं समर्थ नहीं है,
ढूढ ढूढ कर हार गया हूँ हाट-बाट है
जहाँ उचक्कों की बनती है, कौन घाट है
अच्छे जल का—खोज किसी की व्यर्थ नहीं है

मानवता के गहन विपिन में भटक गया मैं—
जितने नर, जितनी नारियाँ—सभी के अपने
अपने सपने—अपने अपने पथ या साथी
मिले—देर से समझा इस को नया नया मैं—
कच्चा ही था आखिर—मुझे पकाया तप ने—
दिया ज्ञान वह जिस की मुझ को अभिलाषा थी

36 अभी अभी जो चला गया उस ओर—उधर—वह—
वही आदमी जो लंबे लंबे डग भरता
चला जा रहा है विलब होने से डरता
सा है उस के भरे बदन पर जितना भी रह
पाता है आत्मीय भाव आखो से साग्रह
उतना ही बरसा करता है पथ तय करता
जाता है वह जैसे तैसे जीता मरता
दुविधा में भी बाजे बजते रहे गहागह

जाने हुए शब्द भी मैं प्राय चुनता हूँ
अपने मतमत अर्थों में, अभिप्रत ध्वनि
मर्म-तरगो में लहराती है, कानो की
सवेदना विदित है मुख का पर सुनता हूँ
असबद्ध उत्तर, कैसी हो गई है अवनि,
क्या भाषा को चाह नहीं है सध्यानो की

हरितकृष्ण पत्रों के कपित पुट पर रख कर 37
अपनी मजरियो की अजलि सहकारो ने
तुम्हे समर्पित की आभ्यतर सस्कारो ने
प्रभामडलित तुम्हे रोदसी मे स्थित लख कर
कडवे, मीठे, तिक्त, कसैले सब रस चख कर
तुम को सीस नवाया वीणा के तारो ने
और वदन पर लिखित दगो के उपहारो ने
वज कर बजा दिया मुझ को भी निरख परख कर

उघर सावली सरसो आज वसती धारे
झूम रही है लहराया है वय का झूला
और निखार आ गया है, कोयल ने आ कर
तुम्हें पुकारा ह, अब किस को और पुकारे,
नील गगन क्या तीसी की फुनगी पर फूला,
भाव रूप हैं रूप भाव हैं—क्या कुछ पा कर

38 धूल धरा से कितनी बार उठी चरणो से
कौन कहेगा? उठ कर धूल बठ जाती है
और चरण वे अब तक जिनकी गति गाती है
दश - काल की मर्यादा में व्याकरणो से
छिन्नभिन्न कर दिए गए हैं सवरणो से
समुपलब्धि क्या हुई—बात मन मे आती है—
जिजीविषा उपकरण कहाँ से क्या लाती है,
इस का समाधान सभव है आचरणो से

जिस को हम इतिहास कहा करते हैं माटी,
हड्डी, पत्थर, लोहा, ताँबा, पीतल, सोना,
चाँदी, कौडी, मूगा, शख छोड कर क्या है
जहाँ कही भी जैसे भी जीवन परिपाटी
प्रकट हुई है, उसका कुछ वैसा ही होना
[illegible] हम लोगो युगो [illegible] वैसा है

39

गाते हुए गले में कितने दिन गाएँगे,
कितने दिन हम सुन पाएँगे, पर यह गाना
अक्षर रूपों में जीवन के पथ पर नाना
स्वर्ग उठायगा—सुन सुन कर मन लहराएँगे,
कर्मपाश में बँधे हुए भी जो आएँगे
स्वर की डोरों से खिंच खिंच कर उन का आना
अंतर को हुलसाएगा, हुलास से जाना
पथ सँवार देगा, आनंद नया पाएँगे

रूप गीत के हम साखी हैं वैसे जैसे
पवन मंडलाकार कृष्णघननील उमड़ते
हुए मसृण आषाढ़ी मेघों का साखी है
उन का गर्जन, वर्षण आवर्तन सब कैसे
कैसे रूप लिया करता है, घटा घुमड़ते
वैसी ही देखा करता है जो पाखी है

40

शब्दकार, इन शब्दों में जीवन होता है
ये भी चलते फिरते और बात करते हैं,
तोष, रोष—जब जैसे भावों से भरते हैं
तब वैसे ही अर्थों का व्यंजन होता है
संगत शब्द अर्थ से अनुरंजन होता है
साक्षर शांत लिखित ध्वनि लहरों पर तरते हैं
अपनी आँखों में स्वीकृत प्रकाश भरते हैं,
जान अनजाने भय का भंजन होता है

शब्दों में भी हाड़, मांस है जीवन धर कर
वे भी जीवधारियों के स्वरयंत्र सँभाले
स्फुट, अस्फुट दो धाराओं में प्रवहमान हैं
रात और दिन—द्यावापृथिवी में विचरण कर
झलकाते हैं दुनिया के सब खेल निराले
और मनोहर काल-स्रोत के सन्निधान हैं

41 स्वर-समुद्र का मुझ को तुमने मीन कर दिया,
यह क्या लीला की कैसा आलोक दिखाया—
तपा तपा कर जीवन को अविराम उठाया,
मेघों की माला रच दी, स्वाधीन कर दिया
नील गगन मे पहुँचा कर रगीन कर दिया—
आनंदित हो गया विहग, पंखों पर छाया
छोड चला, नवीन मे उसे नवीन बनाया
प्राचीनों मे ले जा कर प्राचीन कर दिया

स्वर के बाहर मैं क्या हूँ, कुछ नहीं कुछ नहीं,
कुछ की खोज किया करता हूँ कुछ पाता हूँ,
जो कुछ पाता हूँ, वह कुछ भी खो जाता है,
यह सब क्या है—आज कहीं है और कल कहीं,
वह सुदरता क्या है जिसको मैं गाता हूँ—
आँखों से क्यों मन का विनिमय हो जाता है

42 मरकत मणि के ढक्कन मे हम ढके हुए हैं
सूरज, चाँद, मेघ, तारों की तरह और भी
आते हैं, जाते हैं—सिर पर किंतु मौर भी
रखे रखाए चलते हैं पर थके हुए हैं,
ताप कठिनतम खाते खाते पके हुए हैं
फिर भी अभी और पकना है नए तौर भी
अभी सीखने हैं, जीने के लिए कौर भी
हाथों मे लेना है, मधु तो छके हुए हैं

नदी, पहाड नगर, वन कौन, सिंधु सब इसमे
पडे हुए हैं, ये जलयान, विमान बराबर
रेलगाडियों सहित इसी मे नाच रहे हैं,
इस चुनौती दे कर लाँघे इतना किस मे
बावम है, कौतुकी उपग्रह इधर सरासर
महाकाश मे पहुच सवेग कुलाँच रहे हैं

कुछ आँखों से ज्योति निकलती है कुछ ऐसी 43
जो प्रभात रवि से जब तब निकला करती है,
ठहरे जीवन पर चंचल लहरें भरती हैं,
गति ही गति अंकित होने लगती है वैसी
जैसी पहले कभी नहीं थी, वैसी कैसी
मन की धारा होने लगती है, धरती है
वह अचला हो जाती है, ऐसे हरती है
चंचल मन को, नर जैसा है नारी तैसी

विषमशिलासंकुला पर्वतोद्भूता गंगा
शशितारकहारा अभिद्रुता अतिशय पूता
निविधनिनादविहाररता कृषिफलानुकूला
जिसकी हिमवत से जलनिधि तक धार अभंगा
दिखलाई देती है उस को किस ने भूता
कौन फूल उस के जल से भारत का फूला

44 आहत शब्दों से तेरा मंथन करने की
मैं करता हूँ अगर ढिठाई मां, तो इस में
तेरा प्रोत्साहन है और नहीं तो किस में
इतना बल है जल से अपना घट भरने की
जुगत चाहिए, इस के बिना तथा हरने की
कोई आशा नहीं—और आशा भी, जिस में
कर बल है उस में रहती है वह जिस तिस में
नहीं रहा करती है, नौका है तरने की

कैसे और कहाँ से शब्द अनाहत पाऊँ,
मुझ आहत पर तू ने कृपा दृष्टि डाली है
यह सामान्य नहीं है, तेरे मन में चाहत
नहीं अनाहत के प्रति माँ—मैं भर भर लाऊँ
आँखों में जल मेरे पास कहाँ थाली है
तुझको नहलाऊँ, प्राण जी को कुछ राहत

शब्द शब्द से व्यंजित जीवन की तलाश में 45
कवि भटका करता है, उस की यह आकुलता
समझ भी नहीं समझ सकी वह कौन अतुलता
है जो श्वासों के प्रवाह को मोह-पाश में
बाँधे हुए धरित्री या इस महाकाश में
कहीं स्थिर नहीं रहने देती कुछ तो खुलता
जो रहस्य है औरों से भी मिलताजुलता
कुछ तो होता रात और दिन के प्रकाश में

यह भी कोई तुक है—कहीं फूल मुरझाया
और आप की आँखें भर आईं, थोड़ा सा
रक्त कहीं बह गया, आप बेचैन हो गए
कोई पूछे—आँसू गिरा गिरा कर पाया
क्या आप ने, मिला कुछ भी दम और दिलासा
कभी किसी को, क्या दुनिया के ताप खो गए

46 मैंने जीवन की शराब पी, बार बार पी
जब जब होश हुआ तब तब ले ले कर प्याला
ओठों तक पहुँचाया अंतस्तल में ढाला
उस रस को जिस की सचित सोद्वेग चाह थी
सिरा सिरा में जागा, जग कर एक आह की—
देखा, मुझ को ला कर किस दुनिया में डाला
उस ने, जहाँ भले स्वप्नों तक का तो टाला
रहता है, खीझा, फिर अपनी नई राह ली

मैं इस जीवन की शराब को पीते पीते
वर्षों का पथ क्षण की छोटी सी सीमा में
तय करता चुपचाप आ रहा हूँ अनजाने
और अपरिचित चेहरे अपने जैसे जीते
जीर्ण शीर्ण मिलते हैं, मैं उन का कर थामे
देता हूँ जीवन, जीवन के मधुमय गाने

इतने पर भी माओ के प्रति मेरे मन मे 47
वही भाव है जो पहले था, बना रहेगा,
यद्यपि मेरे देश का रुधिर अभी बहेगा
हिमशृगो पर—और देश के पूरे तन मे
और तनाव बढ़ेगा, और रोष जन जन मे
सुलगेगा, अत्याचारो का वेग कहेगा
प्रतीकार के लिए, राष्ट्र का तेज सहेगा
आखिर कितना, दर्प जगेगा सब के प्रण मे

माओ, तुम जननायक हो, तुम ने जनता का
जीवन जीने योग्य किया है, चीन जाग कर
अपने पैरो आज खड़ा है—पर भारत का
दोष कहाँ है, अपनी सीमा की रक्षा का
कार्य उसे करना है सारा मोह त्याग कर,
स्वाभिमान ही सार तत्त्व है मानव-मत का

48 गए सुभाषचन्द्र वसु, रहने को आया है
कौन यहाँ जो आता है उस को जाना है
इस दुनिया को जो सरायफानी माना है
सब ने, यो ही नहीं, सत्य को झलकाया है
सदा असत् ने अपनी बलि से, छलकाया है
जैसे अधजल घट न जल को पछताना है
उन के लिए जिन्होंने चरण चरण छाना है
छोर जगज्जीवन का, नया तेज पाया है

कहीं स्वार्थ के अदर सब का अर्थ समाए
तो सुभाष की झलक सामने आ जाएगी
उसी समय प्राणो का मोह नही यदि रोके
तो कोई अपना सिर दे कर सार कमाए—
फिर भी कुछ समता सुभाष से आ पाएगी
कैसे कहूँ, मरे बाहर भारत के होके

49

गाधी मारे गए, न मारे जाते तो भी
मरने यहाँ सत्य यदि है तो नाम राम का
और किसी की शवयात्रा मे यही काम का
घोष रहा है गाधी के प्राणा का लोभी
असतुलित था, हिंदूवादी चाहे जो भी
कहा करें गतिशील आदमी कभी चाम का
थैला नहीं बोलने वाला जिसे दाम का
कोप कह सकें, ऐसा जन यदि कोई हो भी
तो भी वह भी चाहक होगा भले नाम का

गाधी थे आदमी आदमी वे कैसे थे
जैसे अधिक नहीं होते हैं जो रोते है
उन के लिए आदमी वे भी हैं पर कैसे
जसे लाखो लाख मिलेंगे, वे ऐसे थे,
वे वैसे थे, मरते हुए, समय खोते है
अपना और दूसरो का, विधवाओ जैस

50 यदि इच्छा है हिंदी की बिंदी होने की
तो इस नास्तिक युग मे विश्वनाथ की सेवा
एकमात्र साधन है इसे छोड कर खेवा
नहीं पार जान का चिता तज साने की
वण वण स वर्णित बीजमत्र बोने की
विश्वनाथ ने स्वय साधना की है देवा
राधन अक्षर - ब्रह्म का किया, अपनी जैवा
काक्षा तप से साधी, मानस मल धोन की

चेष्टा सतत तप से की, तप से विद्या को
अनवद्यागी किया, क्रम से धत जीवन को
कसते गए कसौटी कचन को कसती है
जसे वसे ही, अपनी रचना हृद्या को
बसा दिया आशा से मन मे, मन से मन को
मोह लिया जसे मन मे शोभा बसती है

हम जिस घर में पडे हुए हैं उसमे खिडकी 51
एक नही है, जिस से हवा रोशनी आए
बाहर की, सधो से हो कर छाया छाए
दीवारो पर, अपनी उन्मुखता मे छिडकी
हुई प्रकाश तरगा से आपस की झिडकी,
खीज, घुटन, दूरी है इस म कोई पाए
कैसे पथ विकास का—ज्ञान को आ जाए,
भय ही भय देखे जैसे उड जाए पिडकी

यहा बाप दादा को नही हमे रहना है
हम को अपनी आँखो देखरेख करनी है
अपनी अपनो की अब तो इतिहास पुराना
सग्रहालयो की शोभा ह सच कहना है
इस जीवन का घर की नई नीव धरनी ह,
धारण करना है, नवीन मानव का बाना

52 तुम मुझ से नाराज हो गए अभी कहा क्या
मैं ने तुम से अच्छा भाई, दाढी चोटी
जो जो चाहो रख लो गम गम वह रोटी
जो मुह मे जीवन बनती है, भई रहा क्या
अतर उस म, इस अभेद को नही सहा क्या
तुम न ऐसी ही कितनी ही छोटी छोटी
बातें तुम्ह एक करती हैं अपनी गोटी
देख रहे हो इस धारा मे नही बहा क्या

नाक दबी हो या उभरी हो, माथा नीचा
हो या ऊँचा, कोई लबा हो या बौना
आँखें तिरछी हा या पती हा रगो म
काला पीला, लाल श्वेत जिस से भी सीचा
हो शरीर को—दुनिया मे मानव का छौना
कोई भाषा बोले अलग नही अगा म-

धूप बहुत पहले जब आई तो पीपल की 53
फुनगी पर आई, टूसे से टहनी टहनी
उन्मुख थी, ललछू पीली आभा ने पहनी
नई सुनहली अँगिया हवा चली तो छलकी
छिपी हुई छवि, वर्षों की महिमा इस पल की
सीमा में आ गई, धार धरती पर बहनी
शुरू हुई—पीपल की हार हुई अनकहनी,
उतर गई देदीप्यमानता, सब पर झलकी

मैं ने समझा था, यह पीपल जटाजूट में
आज व्योमज्योतिगंगा को शिरसा ले कर
खड़ा रहेगा—लेकिन ज्योति उतर आई है
हरित तृणों को हुलसाती है और लूट में
लेती है शैथिल्य विश्व का, अंजन दे कर
नई ज्योति का नेत्रोन्मीलन कर आई है

54 महाकाश का कलश सुनील पारदर्शी है
उसमें अपनी पृथ्वी स्थित है, घूम रही है,
एक ओर तो प्रखर ज्योति की धार बही है
सूरज की, दूसरी ओर तम सुस्पर्शी है
अस्थिति में स्थिति—जीवन स्वयं रोमहर्षी है,
मरण दौड़ में पिछड़ गया है किंतु सही है
जीवन ने जो व्यथा किसी से कहा कही है,
कौन कह गया यही व्यथा ही मधुवर्षी है

घट के भीतर घट हैं घट ये चाक पर चढ़े
घूम रहे हैं कभी सँवरते, कभी बिगड़ते,
और चाक यह, अहोरात्र चलता जाता है
कैसे कैसे वहाँ कहाँ जब से उठे बढ़े
रंग रूप जीवन के इस को लड़ते लड़ते
वर्तमान भी देख देख कर दिखलाता है

उड़न वाले पक्षी को तो डाल मिल गई 55
हरे भरे फल वाले तरु की, मुझे क्या मिला—
पृथ्वी पर चलता हूँ तो आकाश से गिला
करता हूँ थक जाने पर वह कली खिल गई
शायद मेरी दशा देख कर और हिल गई
नई सहानुभूति से भर कर मगर खिलखिला
उठी, खिलखिलाहट का चलता रहा सिलसिला,
कहूँ कहूँ जब तक कुछ तब तब जीभ किल गई

कौन शिकायत करे, शिकायत से क्या होगा,
कौन सुनेगा, बहुचर्चित करुणा के सागर
कान भर दिए गए—और मन भाग रहा है
औरों के आगे मैंने क्या कितना भोगा
जीवन के क्षण में रीती ही अच्छी गागर
शिलासंधि में वह दूर्वांकुर जाग रहा है

56 उकठे हुए पेड़ पर मैं ने दीठ गड़ाई—
मन में हरियाली के जीवित चित्र आ गए,
कितने दूरागत खग आए रुके, गा गए
अपने अपने गान, मान की मौन कड़ाई
पहले कहीं कहाँ थी, आ कर नित्य लड़ाई
सुखाभिलाषी करते थे, प्रति दिन बहा गए
सूर्य-चंद्र ज्योतिधाराएँ, शरण पा गए
जो छाया में आए, गत हो गई बड़ाई

आकाशोन्मुख निष्पल्लव सारी शाखाएँ
और प्रशाखाएँ फिर भी किसलिए बनी हैं
अब भी इन में क्या कोई प्रार्थना शेष है
पृथ्वी के इस कोने में अतीत भाषाएँ
हाहाकार कर रही हैं नायास सनी हैं
जिजीविषाएँ—कहाँ काल है कहाँ देश है

57 हम ने अपनी जरूरतों को जान लिया है
और जान कर उसी जगह हम नही टिके है,
बाजारो मे यहाँ बिके हं वहाँ बिके हं
चीजो की कीमत है, अब यह मान लिया है
और उसे पाना है, जी मे ठान लिया है
अगर जरूरत नही रत्न भी यहाँ पिके हैं
इधर उधर की आखो को बेकार दिखे हैं
अर्थों का वितान हम ने भी तान लिया है

जीवन मे अर्जन का मतलब पसा ही है,
पैसा ही जीवन के स्तर का मानदड है
इसी लिए आराम हराम कहा जाता है,
फूलो का वेलो का होना ऐसा ही है
जैसा शुक्र और मगन का नभोखड है
चिडियो मे शुक पिंजरे मे है ही, गाता है

58 शब्दो मे उन अर्थों को मैं कैसे लाऊँ
जो आमो की टहनी टहनी मे फल बन कर
भूल रहे हैं जगल मे देखा है सन कर
सिंह किस तरह चलता है, किस विधि से पाऊँ
धरती का-सा धैय दृगो मे व्योम बसाऊँ,
फिर यह छवि उरेहता जाऊँ मन से छन कर
रूप और से और बनेंगे तन मन धन कर
कैसे उस को मूत बनाऊँ और सजाऊँ

मुझ को जीवन की मुद्राएँ घेर रही हैं
जल स्थल नभ मे प्राणो की अगणित धाराएँ
प्रवहमान हैं—प्रकृति और मानव कृति मिल कर
इस जगत का अपनी आँखा हेर रही है
सृष्टि-पदो की साक्षी हैं नभ की ताराए,
अथ और भी खुलते हैं भावो म खिल कर

59
चांद नहीं है और चांदनी धरणीतल पर
छाई है, कुछ अन्धकार है कुछ प्रकाश है,
एक अजब-सा धुंधलापन है, प्रतीकाश है
यह परिचय, या जो जीवन की प्रति हलचल पर
अंकित हो उठता है, मधकों के बल पर
और और बढ़ता है ऐसा मोहपाश है
मधुमास का सुंदर वस महाकाश है
बसा हुआ मंजरियों द्वारा पवन-पटल पर

और आम का पेड़ नहीं होगा तो होगा,
सौरभ की लहरों ने अपना जाल बुन दिया
चारों ओर, और मंजरियां धूप-दीप-सी
अतहसित गगन-उन्मुख हैं इन को भोगा
है वसंत ने रामप्राण ने जिन्ह चुन दिया
वसुंधरा ने मर्यादा दे कर महीप सी

60 जहां कहीं भी देखा मैंने हरियाली को,
मंडल में ही उसे पनपते बढ़ते पाया
और खमंडल में उन्मुक्त चढ़ते पाया
रात रात भर सदा अंधेरी उजयाली को
उस के वर्ण-गंध में पाया मधु-प्याली को
पुष्पों के कितने वर्णों से मढ़ते पाया,
कोकिल को कुंज कुंज में पढ़ते पाया
उस का विरुद पाठ, श्री पर झलकी लाली को

नभ का नील वर्ण हरियाली को छा छा कर
और और से और और की ओर निराली
श्री अर्पित करता है जैसे प्यार हृदय को
नए नए भावोदय के गायन गा गा कर
दर्श देने में कुछ विशेष दिखला कर काली
रातों को उज्ज्वल करता है सहज समय को

चिताओं के ऊपर आ कर जब भी जग को
मैं निहारता हूँ तो इस को नदन वन से
किसी अश म न्यून नही पाता हूँ मन से
मनन किया करता हूँ—मानव अपने डग को
कुछ सँभाल कर रखता तो इस कुसुमित मग को
विकृत न करता, सुदर प्राणभरे जीवन से
जो अविरुद्ध शक्ति पैदा होती वह जन से
जन का हृदय एक करती गति दे कर पग को

यह सब तो सपना है आखो का अपना है
सूर्योदय सूर्यास्त और दिन, दिन के देखे
वर्ण, रूप, मुद्राए, ध्वनियाँ — जो भी जाने
अनजाने हैं उन सब का जी भर तपना है,
आह सभी की सांसो मे है मेरे लेखे
सुखी कही होगे तो होंगे अनपहचाने

62 सुदर आखें, विलुलित वणी और चलावा—
आगे ही देखते हुए, अपनी ही धुन मे
बढते जाना, आवश्यक होने पर उन म
मुड कर बगल देखने की रुचि पथ की आवा
जाही मे मरजाद बचाना और दिखावा
भी *निबाहना* देख परख कर, अपने *गुन म*
और निखरना, इस धरती पर बरसे हुन मे
बारहबानी को देना दिनरात बढावा

यह भारत की कन्याओं का कठिन काम है
जिस की ओर लगे हैं नर-नारी के लोचन
इस काटे पर तुलना कितनी बडी बात हो
अगर कही हो जाय सचाई एक नाम है
जिस का अर्थ खो गया है सशय का मोचन
कौन करे, जब डाल डाल हो पात पात हो

शब्दों के द्वारा जीवित अर्थों की धारा 63
मैंने आज बहा दी है जिस में दो तट हैं
एक भाव का एक रूप का निकट निकट है
चाह दूर दूर दिखते हों जो भी हारा-
थका यहाँ पहुँचेगा वह तन मन में प्यारा
तेज ओज पाएगा, लक्षण सभी प्रकट हैं
हुलसी हरियाली से उपचित हैं, उदभट हैं—
वचन प्राण का परितोषण करते हैं सारा

शब्दों से ही वर्ण गंध का काम लिया है
मैं ने शब्दों को असहाय नहीं पाया है
कभी किसी क्षण पदचिह्नों को देखा ताका
मुझे देख कर सब ने मेरा नाम लिया है
बता दिया, क्या वस्तु सत्य है, क्या माया है
क्या है वर्ष का चंड दिवस, क्या है मधुराका

64 किस के हैं ये पाँव, धूल पर साफ छपे हैं
पूरे पूरे इन्हें हवा ने नहीं उधेड़ा,
अभी धूल बैठी है वरना जरा बखेड़ा
हुआ, वहाँ वह धूल कणों की नाप नपे हैं
ये जीवन के वाहक, अच्छी तरह तपे हैं
तपी भूमि से और चाह न इन्हें उखेड़ा,
पोली पोली दौड़ाया, हर ओर पछेड़ा
खेप खेप पर साँसा आसा लिए खपे हैं

मिट्टी में इन चित्रों को किस ने देखा है,
किस ने इनके मर्मों को समझा-बूझा है
किस ने इन साँसों की व्याकुलता जानी है
अभी अनुरक्ति लक्षित एक एक रेखा है,
जीवन की इस गति की यह किस को सूझा है
छवि जगती में नश्वरता की पहचानी है

65

कल अस्ताचलगामी रवि-कर की सारगी
मैंने यो ही ले ली, धुन मे लगा बजाने
सग सग सवादी स्वर मे अपने गाने
चिडिया ने गाए, पत्ता ने रगबिरगी
नृत्यकला दिखलाई सारा विश्व तरगी
बना तरगो के कपन मे, अनपहचाने
बधु और आत्मीय बन गए, जाने-माने
प्राणाधिक हो गए—इस तरह जीवन सगी

सायकालिक सगायन मे फूल चढाए
पल्लविनी लतिकाओ ने, पडो ने हिल कर
भाव बताए और पवन ने बहते बहते
साग्रह कहा कि मधु ऋतु जब दरवाजे आए
तब ऐसे ही स्वागत करो हृदय से, खिल कर
मौन विराजे मुख पर, मन की कहते कहते

66

जब जब बाहर से आया तब तब मेरा घर
अपने अपनेपन से अधिकाधिक अपनाता
मुझे मिला आवाजो से ही जान बचाता
किसी तरह घर आता हूँ, इस मे अपने स्वर
सुनता हूँ गुनता हूँ, बार बार भी सुन कर
तृप्ति नही पाता अपने मन को समझाता
हूँ, जीवन भी बदी स्वर है स्वर का नाता
कहाँ छोड पाता है जीवन, जग मे जग कर

मिटती बनती रेखाओं से, उस कोने में
मैंने कई चित्र सिरजे हैं जिन को मेरी
आखें खोज लिया करती हैं, तुम्हे लगेगा
यह मेरे मन की उडान है पर होने म
जितना मैं हूँ उतना ही वह भी है हरी
हुई सिद्धि पाते ही पाते ही जीवन-योग जगेगा

कितने डर हैं हम कितना कम बोल रहे हैं, 67
कितना कम मिलते हैं, कितना कम सुनते है,
कितना गम खाते हैं, कितना कम गुनते हैं,
हम अपना रहस्य कितना कम खोल रहे है
कहा कहा होना था पर हम गोल रह हैं
होना की मर्यादा से हम सिर धुनत हैं
जब कुछ कभी गुजर जाता है, फिर चुनते हैं
चिताम्रो को भाव चढा कर तोल रह है

भीड भाड मे इस का कब विचार करते हैं,
य जो भाव पूछ कर अभी वढ गए आगे,
ये कुछ यो ही भाव पूछने आ जाते हैं,
इन्हें कुछ नहीं लेना देना आ मरते हैं,
घर भी रहते तो क्या करते, घर के त्यागे
चितामुक्ति मार्ग पर बिखरी पा जात हैं

68 डर लगता है जीवन मे उन से जो अपने
होते हैं अपनपन का ज्ञापन करत हैं
भावो और अभावो का मापन करत हैं
तुलना द्वारा और अनजित दृग के सपने
मुखरेखा से जान लिया करत हैं, छपने
से पहले ही उस का विज्ञापन करत हैं
मनचाहा हीन जैसा तापन करत हैं
अतस्तल का, जसा किया न होगा तप न

तप विशिष्ट देता है कमलो को मुस्कान,
देता है समीर को जल को हिला हिला कर
उस के बहलाने का उद्यम करत निष्प्रभ
दता है आकाश-नीलिमा को छा जात
जग क ऊपर, आतुरता मे लिखा लिखा कर
देता है रवि की किरणो को जल पर चंचल

69

और विश्व का यह जीवन भी कहा मिलेगा,
दुख अभाव अवसाद अभी हैं तो होने दो
अरुण सूर्य को आ आ कर प्रकाश खोल दो,
कभी न कभी नहर के ऊपर कमल खिलेगा,
चिर थानी सगीर भी उस । आप हिलगा,
दिर जाने दो सरोवर को कुछ खोने दो,
दिन आर दो बोलेगा, उतना रोने दो
जितना रो सकता है तब तो भार मिलेगा

भाषा के भी पार प्राण लहरें लेता है,
उगता है, बढ़ता है और पल्लवित हो कर
अपने पाव खड़ा होता है, इस के द्वारा
और और भी उठते हैं प्रति क्षण देता है
नया बोध अस्तित्व — महत्ता सारी खो कर,
जिस की बूद बूद स वह निकली थी धारा

70

जीवन माया है धाराओं की असगता
और सगता इस म साथ साथ चलती है —
यह खलती है तो उतनी ही वह खलती है
इस असग मन को अवसादों की अगगता
और अभिलषित आशा की केवल निरगता
रातों के ही अधकार-गढ़ म पलती है,
मैं न जान लिया है यह मेरी गलती है
यदि मैं चाहू सग से चुन कर सुसगता

फूल और काटों को किस न उलझाया है,
दोनो कुछ आगे पीछे डालो पर आए,
दोनो ने ही कोमलता से आंख लडाई,
एक कठोर भाव पर निर्भर हो आया है
और दूसरा कोमलता से आंख मिलाए
चलता है कठोर धरती पर झेल कडाई

कोकिल का कूजन सुन कर सहकार ने कहा — 71
अग्रदूत, आए वसत तो मुझे बताना,
ऐसा न हो कि आ कर निकल जाय अनजाना
बोला पचमगायक—आया और आ रहा
है वह भू पर, अपने जी म प्रश्न भी सहा
तो तुमने क्या, मजरियो का ताना बाना
तुम धर लोगे सब मे पहले, फिर बतलाना,
है कोई जो उस के वेगो म नही बहा

गधोन्माद तुम्हारा भौरो को व्याकुल कर
इधर उधर भटकाएगा, तुम खिले रहोगे
अपने परिकल्पित विकास मे मीनकेतु के
अभिज्यशर से अपने सकल्पों को खुल कर
कभी किसी से किसी समय भी नही कहोगे
प्राणवायु मे रमे रहोगे रम्य सेतु-से

72 नए नए रूपो की नई नई रेखाएँ
स्मृति के सरक्षण गृह मे सयत्न सचित कर
आगे चरण बढाए है जीवन के पथ पर
मैं ने, क्या जाने अगले दिन क्या क्या लाएँ
क्या क्या अपने सहस करा से दे दे जाएँ,
उत्सुकता है अतर में अभिलाषो के स्वर
रँग रहे हैं और प्रतीक्षा के पखो पर
मन उडता है, विस्मत कर सपूण कलाएँ

जगती की अनतता से मन क्यो थकता है—
क्या यह सत्य नही है, मन की अनतता से
अनतता भी हार मान कर रुक जाती है
सिंधु बिंदु मे समाविष्ट क्या हो सकता है,
क्या उस की स्थिति दिक्कालो का सततता से
परिच्छिन्न हो कर वसे ही झुक जाती है

कोकिल का कूजा गुं र
अग्रदूत, प्राण वसंत ना
ऐसा न हो कि पा कर ि
बोला पंचमगायक—पा
है वह तू पर, अपा
तो तुमा बया, न
तुम घर लोग सब ।
है याद जो उस

गर्वोन्माद तुम्हारा
इधर उधर अटकाए
अपने परिकल्पित
अधिज्यधर से अप
कभी किसी स ि
प्राणवायु म र।

77

और लोग क्या बात कहेंगे किसी बात पर,
कहने दो कहनाव कभी क्या कहीं रुका है,
इसी तरह उद्वेग भाव से आप चुका है
शब्द शाप से हाथ मिला कर किसी घात पर
जाते है चुपचाप वनस्पति एक पात पर
रोप रही है पेय प्राण का हाथ झुका है
मिट्टी पानी धूप सभी का ओर झुका है
तन औरों का ताप बढ़ा कर कई प्रात पर

अगर विरोधाभाव रहे तो जीवन कैसा
एक डाल के फूल एक से कहाँ खिले हैं,
अपने भी तो अंग उदास दीख जाते हैं,
अपना मन भी मौन मौन ही ऐसा वैसा
कह जाता है कौन कौन से मान मिले हैं
किस किस मन को इष्ट अतृप्ति सीख जाते है

78

एनस्वित् है विश्व, अपापविद्धता जी की
मनोराज्य है, और नहीं अनिवार्यतया है
जीवन का उद्योग रजोमय कहाँ दया है
और कहाँ सहयोग भाव है—धुंधली फीकी
आँखों में अनुराग कहाँ से प्रणयवती की
सुकुमारता उतार सकेगा विषमतया है
जब दृष्टि का विकास, वहाँ छवि भी कृपया है
ध्यान भाव से प्राप्त कामना रम्य सभी की

भव का विभव विलास इधर है और उधर है
आँखें ही तो और नवाञ्छित दवी हाय हैं
ओठों के तट, देख उसी से लहराते हैं
विश्वंभर की भूमि दबाए हुए भूधर हैं
इधर उधर दिनरात, कौन सा वह उपाय है
जिस से नूतन मधु रिरक्षिपु घहराते हैं

भोर बाट जो मौन गही थी साँझ छोड दी, 75
बार बार क्या पाव उसी ढुर्री पर पटकू
क्या पृथ्वी के प्राण व्योम के जी मे खटकू
चले जिधर भी पाव उधर ही बाट जोड दी
जीवन का उत्साह बढ चला, लीक मोड दी
नई दिशा म अभी और मैं थोडा भटकू,
भटक भटक कर प्राणविहारी सदाय भटकू
नए भाव के लिए चाह भी खुली छोड दी

यह अनत आकाश एक सा कहा मिला है,
पृथ्वी के भी रूप बदलते ही जाते हैं,
सागर नूतन स्थान देख कर बढ जाता है,
जग की हसी गुलाब अलग हर जगह खिला है
कठ कठ के बोल भिन्न लय मे गाते हैं—
परिवतन स रग और भी बढ जाता है

76 मुझे आत्मकल्याण और आशा के परिचय
ला ला कर चुपचाप दिया करता है मेरा
यह परिचय दिनरात निरतर अपना घेरा
और और विस्तार के लिए बिलकुल निभय
तोड रहा है और श्वासधारा की लय
सुनता है, फिर कान भूल कर घना अँधेरा
गुन गुन कर स्वर-काप बढ़ाते हैं, यह डेरा
दो दिन का है, प्यास पी चुकी युग के सशय

कल जो मुझ से उलझ गया था वह बेचारा
जाने कहाँ कहाँ न भटक कर इधर आ गया
और इधर भी भाव भिन्न देखे तो खीझा,
फिर का देता खीझ ताव आया द मारा
जिस को पाया और और आपाव खा गया
सबको स, भूत गया नावो पर रीझा

और लोग क्या बात कहेंगे किसी बात पर, 77
कहन दो कहनाव कभी क्या कहीं रुका है,
इसी तरह उद्वेग आप से आप चुका है
शब्द नाव से हाथ मिला कर किसी घात पर
जाते हैं चुपचाप वनस्पति एक पात पर
रोप रही है पथ प्राण का हाथ झुका है
मिट्टी पानी धूप सभी का और फुका है
तन औरों का ताप बढा कर कई प्रात पर

अगर विरोधाभाव रहे तो जीवन कैसा
एक डाल के फूल एक से कहा खिले है,
अपने भी तो अग उदास दीख जाते है,
अपना मन भी मौन मौन हो ऐसा वैसा
बह जाता है कौन कौन मे मान मिले हैं
किस किस मन को इष्ट अतृप्ति सीख जाते है

78 एतस्मित् है विश्व, अपापविद्धता जी की
मनोराज्य है, और नही अनिवार्यतया है
जीवन का उद्योग रजोमय कहाँ दया है
और कहा सहयोग भाव है—धुधली फीकी
आँखा मे अनुराग कहाँ से प्रणय कली की
सुकुमारता उतार सकेगा विषमतया है
जब दृष्टि का विकास, वहाँ छवि भी कृपया है,
ध्यान भाव से प्राप्त कामना रम्य सभी की

भव का विभव विलास इधर है और उधर है
आँखें ही तो और अवाछित दबी हाय है
ओठा के तट, देख उसी से लहराते है
विश्वभर की भूमि दबाए हुए कुधर है
इधर उधर दिनरात, कौन सा वह उपाय है
जिस से नूतन मेघ रिरक्षिषु घहराते है

79 किसी किसी की बात सूक्ष्मतम पट पर मन के
रच देती है चित्र एक से एक सलोने
जिन को संग मुस्कान मिला कर जादू टोने
आँखों में आवास दिला देती है तन के
रोम रोम में हर्ष उमड़ आता है धन के
पाने अधन की पूछ-परख आदर से होने
लगती है दिनरात और जीवन में सोने
के सम हो कर लीन भाव बनते हैं जन के

बातों की ही याद चाँदनी बन जाती है,
दुखों की बरसात बदल कर अंधकार का
वह भारी परिधान सामने सजल सुनहला
शीतल नया दुकूल लिए आगे आती है
मंद मंद सायास छिपा कर चिह्न हार का
करती है स्वीकार प्राप्य सब कह कर पहला

80 जीवन में हम दीपक हुए—अपने को तोले
लहरों पर अविराम जहाँ तिरते जाते हैं
वहाँ श्वास प्रश्वास क्रिया करते जाते हैं
सहज सहज दिनरात वारि में कोई बोले
तो क्या बोले और मर्म यदि अपना खोले
तो किस मन से नित्य जीव मरते जाते हैं
डूब डूब कर और और डरते जाते हैं,
आंदोलित मन प्राण अलग ही अपने को ले

धाराएँ अनुकूल और प्रतिकूल कई हैं
जिन से असावधान कभी क्या बच पाएँगे,
सावधानता एक अनेकानेक भया से
कहाँ कहाँ आघात निबेरेगी, विजयी हैं
सेनाओं के व्यूह मरण की, उतराएँगे
मर मर कर तैराक उपेक्षित पास गयों से

में गुलाव की ग्राव पकड कर मगन हो गया, 81
जीवन रस म रग-रंगी ग्राभा होती है
ऐसी, ग्रौर ग्रपूव काल की वह गोतो है
जिस की नव पहचान प्राप्त कर गगन हो गया
जो पहले था शून्य, भाव से नगन हो गया
उसे सवत जान मान कर ग्रब सोती है
सुरा स थिता ग्रौर इधर मानस मोती है
श्री शोभा-सपन, दुरित का दमन हो गया

ग्राशा देखी है दौर्वीण झनक जीवन की
भूमितलाश्रित पास उसी के सीस उठाए
ग्रभिवादन के भाव दिखाती महाकाश को
लघुता स उमुक्त, वही गुलाब त्रिभुवन की
स्वर-लहरी की तान सरीखा ग्राज झुठाए
हुए चुनौती एक दे रहा है विनाश को

82 वह मोहन ग्रानद, कहाँ है, जो सब का है
जिस के लिए ग्रधीर ग्राज हम तुम या वे है
मल के ग्रानतम स्वरित केवल कल के है
निपट बालुका राशि विकीण हृदय ग्रव का है
कणश वचनहीन, ग्रदय स्वप्न कब का है
जो ग्राशा से दूर हो चुका है छलक है
शुतिया मे ग्रध्यास चित्र जो मगजल के है
सत् का ग्रनुसधान ग्रनुमतिक है, तब का है

नव प्रस्फुटित प्रसून व्योम ग्रपना लेता है
नीरवता से ग्रौर दूसरा के रव उस पर
रच कर कप-तरग प्राण की ग्राकुल भाषा
लिख देत ह, कम समय को वर दता है
तभी विशय विक्षेप विशेषण साग्रह सुदर
दे कर वाक्षित ग्रथ पिहात है ग्रभिलाषा

छूट रहे हैं बाण दिशाओं से प्रकाश के 83
तीप रहे हैं प्राण समझना अभी शेष है
द्वन्द्व का आविर्भाव, ज्ञेय बन गया ही बनता है
या प्रदम्य अपनाव संघटन से विनाश के
गढ़ पर गड़ता टूट पड़ेगा और पाप के
कठिन पाँव भी छूट जायगा जहाँ देश है
लिपटे हुए कल्याण, निरर्थक वासनाएँ हैं
जय प्राणों के प्राण हुए चित द्रव्य नाश के

मृत्स्ना के मनुज तप्त हैं और क्षीण हैं,
छाती में ही भूमि छिपा कर जीवन अपनी
कक्षा में विद्रुत है कोमलता प्रचंडता
मात्रा द्वारा मेय वस्तु है आज जीर्ण है
चिर सत चित् आनंद, नई सरिताएँ उफनी
विषम शिलाएँ तोड़, खंडिता है अखंडता

84 क्षित दीखा तो क्षेय आप ही आगे आया,
हम हैं कितने काल, गता के दिन गिनता के
हो जाते हैं और अतीत विगत बीती के
स्वर स्वर को लिपिबद्ध करा देता है, छाया
अंकित नश्वर ज्योति करा से हो कर माया
जीवनव्यापी दौड़धूप की श्री छिनती के
रूपारूप विचित्र चित्र देती है जी के
भेद दिखा कर नित्य जिसे गीता ने गाया

हम सस्वर सौंदर्य समझते हैं, जाते हैं
जीवन पथ पर पास उसी के उस के द्वारा
समाधान कुछ प्रश्न हमारे सुन लेते हैं
हम उस की विश्वास छांह में सुख पाते हैं
अनुचिंतन में मौन और कुछ और सहारा
माँग माँग कर मौन भाव भी चुन लेते हैं

शोषण नहीं तपन ही 85
शोषण, प्लोषण और स्थिति अनुपस्थिति से
जीवन का अविराम उस सत् की प्रस्थिति से
करता है, दिनरात -एकदिशा संकल्प अपन ही
असत् उजागर रूप भावाश्रयी स्वपन ही
कर जाता है भाव परस्परस्थिति से
देते हैं विनियोग अवमदव्यापी प्रस्थिति से
अतुलनात्मक ? मान जो है एक शपन ही
देता है अनिशेष -यह

जाग कर लहराता है
वारिज जीवन जाम तक उस का अचल
फैला हुआ अछोर व्योम भूरुह उगते हैं
थामे हुए अधीर भौ परिचय गहराता है
यहाँ वहाँ "निर्बाध," फलाए चंचल
चेतन भाव-विभोर, चारा चुगते हैं
जग उठते हैं और यों

वार बार आरती की गई
86 हार हार कर माल आज तक नहीं पसीजा
चिता चिता से, अघ दृगा के पा कर भीजा
निःस्वर सस्वर गुन हैं, कब सुनी गई
पृथ्वी-अचल पुकार माल वे यहाँ ली गई
उन की करुण पाय बार गया, जीवन छीजा
इन की सुध ले प्यार मा ले कर माजा
ऊपर नीचे, अर्घ्य, समर्पण-वृत्ति जी गई
और रहा था

मान और अवहेलना के
वार बार गान, कंठ में अपने दे कर
कालकूट को व्योम निर्लिप्त हो गया
यह विषमता ग्लानि रत्नमणा के
स्तिमित मग्न क, क्षावनाणा क्षिति ले कर
भेल रही है ग्रह विक्षिप्त हो गया
भागी है सब

87 कोई स्थान अगम्य नही है मरण के लिए
और अवधि का बंध नही है, अवधि हुवा है
उस के लिए निदान नही है और दवा है
आपातत निरथ किसी के वरण के लिए
कुठित हुआ कभी न, जगत् म चरण के लिए
पाया नही विरोध, उसे किस की परवा है,
किस के भय स भीत हुआ है, दुख अथवा है
कभी किसी का, रच न सोचे हरण के लिए

उपवन का वह फूल अभी कल तोड ले गया,
परसा उस ने दीर्घकाय तरु को तोडा था,
नरसा जो हिम प्रस्थ उठा कर उस ने फेंके
मरे सहस्र सहस्र, निदारुण शोक दे गया
यदि यह था कर्तव्य, अभी तक क्यो छोडा था,
प्रश्न करे यह कौन, कौन उस का पथ छेंके

88 तुम से परिचय-बंध नही था, नाम ले लिया,
सुना तुम्हारा प्रश्न—अभी क्या मुझे पुकारा
भ्रम भी अपना आप तिमिर के पार उतारा
करता है—पहचान गया पहचान से जिया
ले कर श्वास नवीन कहा, विश्वास से किया
जो सबोधन एक उस स्वयमव सहारा
दे कर सशय तोड आप ने मुझे उबारा
आ कर स्वत समीप जरा अवलब दे दिया

अपरपार समुद्र नाम का लहराता है,
बूद बूद सा एक एक अविभाज्य यहा है
लहरा की गति एक एक को पी जाती है,
यहाँ समुद्र, समुद्र अकेला, गहराता है
गर्जन गर्जन मौन मौन है, शाति कहाँ है—
बूद बूद के पास दो निमिष जी जाती है

89

मजरिया की गध यहाँ है, वहा है, तथा
कहाँ नही है, आप जहा भी जायें मिलेगी,
हवा आप की आय डाल की डाल हिलेगी
हृप और उल्लास दिखा कर उसे सर्वथा
सम्मुख पा कर आप विमुख की त्यक्त सी कथा
फिर गुन लेंगे और आप की व्यथा मिलेगी
गधो के ही पख सहारे कली खिलेगी
मन की, नीरव भाव पायगी दिव्य, जा न था

मजरियाँ आकाश हो गई हैं, यह कहना
छोटी सी है बात, रात दिन यहाँ नही ह
पगला गया बतास, गध यह बाँट रहा ह
इस सुगध का भार चेतनाओं को सहना
है, परिपूरित प्राण आज हैं, प्राण यही ह
करके अगीकार, विश्व भी छाँट रहा है

90 रक्खो अपना मान, व्यथ है मुझे जताना,
मैं जितना पहचान चुका उतना अपना लूँ,
उस का हो लूँ और उसे आत्मीय बना लू,
जग है अपरपार, हृदय की बात बताना
जीवन का इष्टार्थ सत्य है इसे पताना
सब मे बस की बात नही है फिर मैं पा लू
क्या न शाति-सतोष, इन्ही अपना म गा लू
अब मीठे गीत, गीत का ले लूँ बाना

सम्मुख है जो पड उस मन न स्वीकारा
जसा उस ने भूमि को स्वय मान दिया है,
ऊर्मिहारी वायु इस कहता जाता है,
कभी न भी आप इस चुपचाप सहारा
दिया, किया तयार खाना का स्थान दिया है
इस न जो ता, मप इस नहला जाता है

कोई स्थान अगम्य नही है मरण के लिए 87
और अवधि का वध नही है, अवधि हवा है
उस के लिए निदान नही है और दवा है
आपातत निरथ किसी के वरण के लिए
कुठित हुआ कभी न, जगत् मे चरण के लिए
पाया नही विरोध, उस किस की परवा है,
किस के भय से भीत हुआ है, दुख अथवा है
कभी किसी का, रच न सोचे हरण के लिए

उपवन का वह फूल अभी कल तोड ले गया,
परसा उस ने दीघकाय तरु को तोडा था,
नरसा जो हिम प्रस्थ उठा कर उस ने फेंके
मरे सहस्र सहस्र, निदारुण शोक दे गया
यदि यह था कतव्य, अभी तक क्या छोडा था,
प्रश्न करे यह कौन, कौन उस का पथ छेंके

88 तुम से परिचय बध नही था, नाम ले लिया,
सुना तुम्हारा प्रश्न—अभी क्या मुझे पुकारा
भ्रम भी अपने आप तिमिर के पार उतारा
करता है—पहचान गया, पहचान से जिया
ले कर श्वास नवीन कहा, विश्वास स किया
जो सबोधन एक उस स्वयमव सहारा
दे कर सशय तोड आप न मुझे उबारा
आ कर स्वत समीप जरा अवलब द दिया

अपरपार समुद्र नाम का लहराता है,
बूद बूद सा एक एक अविभाज्य यहा है,
लहरा की गति एक एक को पी जाता है,
यहा समुद्र, समुद्र अकेला, गहराता है
गजन गजन मौन मौन है, शाति यहा है—
बूद बूद क पास दो निमिष जो जाती है

मर्यादाओं का सब कहा है, दहा है, तथा 89
कहीं नहीं है अब वहां भी जाने मिलता,
हवा आप का भार दान का जान हिलता
हुए और उन्मान किया कर, उस अथवा
सम्मुख पा कर आप विमुख की त्यक्त ही क्या
फिर सुन लेंगे, और आप का व्यथा मिलता
गावों के ही पत्र-महार कली खिलती
मन की, नारव भाव पायगी दिव्य, जो न था

मर्यादाएं आकाश हो गई हैं, यह कहना
ठाग सी है बात, रात दिन कहीं नहीं है
पाला गया बनाम, गन्ध यह बांट रहा है
इस सुगन्ध का भार चेतनाओं को सहना
है, परिपूरित प्राण आज हैं, प्राण यहीं हैं
करके अंगीकार, विश्व भी छाट रहा है

90 रक्खा अपना मान, व्यर्थ है मुझे जताना,
मैं जितना पहचान चुका उतना अपना तू,
उस का हो लूं और उसे आत्मीय बना तू,
जग है अपरंपार हृदय की बात बनाना
जीवन का दृष्टान्त हुआ है, उसे घटाना
सब के बस की बात नहीं है फिर मैं पा लूं
क्या न शान्ति-सन्तोष, अपना अपना मैं गा लूं
करुण मोठ गान, गीत का ले तू बाना

सम्मुख है जो पड़ा उसे मन ने स्वीकारा
जैसा उस ने भूमि को स्वप्न मान दिया है,
स्वर्गविहारी वायु उसे बहता जाता है,
पक्षा न भी आप इस चुपचाप सहारा
दिया किया तयार खगों को स्थान दिया है
इस ने भी था, मन इसे कहता जाता है

ले घर मर प्राण बाल, जिस को क्या दोष 91
अधिकारोत्तर कर्म तुम्हारा मैं समझाऊँ,
अपना ही परितोष, वसीयत ही लिख जाऊँ,
क्षिति जल, पवनाकाश, अग्नि व मैंन भोग
विषय सभी उन्मुक्त, एक तो यह ऋण लोगे,
जीवन का जो क्षेत्र अकृष्ट रहा दिखलाऊँ,
होगा उत्तरहृप, वहाँ हरियाली पाऊँ
नवल पल्लवित पुल्ल—तभी तुम सब के होगे

प्राणा के प्रिय मित्र, दूसरी बात यही है—
मुझे देख अनदेख नयन जो नीर बहाएँ
उस पर तुम अज्ञात भाव स पीते जाना,
और कहूँ क्या बात, बात जो अभी कही है
सो बाता की बात वही है, प्राण नहाएँ,
जीवन सागर पार प्रतीत सुनाए गाना

92 सुन्दरिया स सान दृगो के अलकार हैं,
कामल कोमल तार प्राण के बज जाते हैं,
हृदय हृदय के भाव राग से सज जाते हैं
आकुल और अधीर श्वास जस पुकार हैं
किसी के लिए मौन, प्रणय के परिष्कार हैं
विनयाधान समेत चपलता तज जाते हैं
उत्सुक नयन सहृप आप ही मँज जाते हैं
जीवन सचित मँत, साज य सुरबहार हैं

अमतस्यदी बोल प्राण म रम जाते है,
नयना म वह रूप तरंगें ले कर आता
हैं या ही दिनरात हृदय मे बस जाता है
पूरा पूरा शात और रस थम जाते हैं
रक्त हृदय का और ओर चचल हो जाता
है मन का अभिमान मान दे कर गाता है

मिली कहाँ वह धूल कि ऐसे फूल उगाए, 93
और रची चट्टान, अनेक पहाड़ कर दिए,
वारिधि को संगीत के लिए सभी स्वर दिए,
और बना कर प्राण प्राण को सदा चुगाए
मान दान व अन्न, उसी के लिए जुगाए
कोमल भाव कठोर भाव, कुछ और पर दिए
मिला मिला कर ताप, अगेहों जान घर दिए
तन के भू के भव्य भोग जो रह भुगाए

इतने इतन काय किए, कतृत्व जगाया,
और प्रपंच अपूर्व शून्य में ला कर थापा
फिर हो गया अलक्ष्य, लोक के लोचन हारे
रचना को ही देख देख कर, और लगाया
मन, पूर्ण का अंश स्फुरित को मन में छापा
जीवन-पथ पर नित्य, प्रश्न के उत्तर सारे.

94 मधु का धीर समीर [illegible] सुगंध सँभाल
मदानों को और पहाड़ों को फलांग कर,
नदियों [illegible] पर कलि लताओं का दुलार कर
वन में पहुँचा और राग अभिराम निखार
वृक्ष वृक्ष से शीघ्र तिमिरमय देश उजार
रागों के ही दीप जला कर फिर पुकार कर
उस [illegible] मृग के यूथ उठा कर उस कगार पर
जहाँ [illegible] था [illegible], सुराग कण्ठ-[illegible]

वही हमारे पास [illegible] पहुँचा है
यहाँ किसी [illegible] है, नहीं किसी का
[illegible] है [illegible]
[illegible] फिर [illegible]
[illegible]
[illegible] कर [illegible]

95 तोड़ तोड़ कर आम खेत से खग उड़ उड़ कर
चल देते हैं नीड़ दिशा में ये मंगल के
दिन है अपने काम में लगे सब, हलचल के
स्वर उठते हैं शांति दसती है मुड़ मुड़ कर,
ऐसी क्या है बात कि सब के सब जुड़ जुड़ कर
लगनी में हैं लीन आज को भूले कल के
लिए सब उद्योग कर रहे हैं, यह फल के
संचय का है पर्व अभी हुक्के पुड़ पुड़ कर

बजे, उठा कुछ धूम, रंग आँखों में, आया
हँसिए में उत्साह, नया पहुँचा वह सलटा,
कुछ मालूम हुआ न, उधर से गीत कढ़ाए
मजूरिनों ने, आम और मद से बौराया,
कटहल की अरघान उठी, काया का पलटा
उमड़ा बन कर ज्वार, सभी ने वेग बढ़ाए

96 'मेरे ऊपर रंग और ही पड़ा हुआ है
जिस की भाषा मौन चेतना के समान है
है तो है अशांत, जरा भी नहीं ध्यान है
यह तो कोई ध्येय नहीं है बड़ा हुआ है
अनुभव अपने आप, आप ही खड़ा हुआ है
जीवनमयी कठोर भूमि पर स्वल्प ज्ञान है
और अधिक अज्ञान यहां है जो विज्ञान है
ज्ञान तनु का क्षुद्र, भूमि में गड़ा हुआ है

जड़, चेतन, सब आज मुझे अपने लगते हैं,
किरणों का उदभास रूप जो जो लाता है
अनुरंजित उदगीथ उसी का अचल बन कर
होता है आवास नए सपने जगते हैं
जिन का परिचय-भाव स्वरों में छा जाता है,
किरण किरण के रंग हुए मन के छन छन कर

कठफोडे ने मार मार कर उन कीडो को 97
बाहर आज निकाल लिया आहार के लिए
जो तरु के अतस्थ शत्रु थे प्यार के लिए
शुकदपति न एक वक्षकोटर नीडा को
तज कर कभी पसद किया, अपने नीडो को
अच्छी तरह सँवार कर नए भार के लिए
भली भाति तैयार हुए उपहार के लिए
खग वसत के द्वार ताकते हैं पीडा को

आने वाले ग्रीष्म-दिवस तरु की छाया मे
बीतेंगे, हर रोज, वहा मेला उमडेगा,
नर नारी आबालवृद्ध चल कर आएगे
हरियाली म आप, ठहर कर इस माया म
रमे रहगे और सीस पर से उखडेगा
चिता का ससार, विहग दल मे गाएँगे

98 परस्पराश्रित प्यार भुवन म नर नारी का
वसुधरा-आकाश-स्रोत को छू लेता है
इस प्रकार से अथ अनादि जोड देता है
उन प्राणो मे मौन जिह्न अपनी बारी का
चिता सकुल ध्यान कभी हल्के भारी का
शेष विशेषक भेद नही देता लेता है
नाव अथ से पूर्ण सिधु पर जो खेता है
उस का है उद्योग, हिरास नही हारी का

यही प्यार का बीज अकुरित हो कर मन म
नए रूप आकार ग्रहण करता है जिस से
छाया अपरपार फैल कर छा जाती है
दिशा दिशा मे, देश देश मे, निखिल भुवन म
रग रग की और अयाचक जीवन किस स
कौन अथना चाह चुका—जगती गाती है

तोड तोड कर वाल खेत से खग उड उड कर 95
चल देते हैं नीड दिशा म य मगल के
दिन है अपने काम स लगे सब, हलचल के
स्वर उठते हैं शाति दखती है मुड मुड कर,
ऐसी क्या है बात कि सब के सब जुड जुड कर
लवनी म हैं लीन आज को भूले कल के
लिए सघ उद्योग कर रहे हैं यह फल के
सचय का है पव सभी हुक्के पुड पुड कर

बजे, उठा कुछ धूम, रग आँखा म, आया
हँसिए म उत्साह, नया पहेंटा वह सलटा
कुछ मालूम हुआ न, उधर स गीत कढाए
मजूरिनो ने, आम और मद से बौराया
कटहल की अरघाम उठी, फागा का पलटा
उमडा बन कर ज्वार, सभी न वेग बढाए

96 'मेरे ऊपर रग और ही पडा हुआ है
जिस की भाषा मौन चेतना क समान है
है तो है, अज्ञात, जरा भी नही ध्यान है,
यह तो कोई ध्येय नही है बडा हुआ है
अनुभव अपने आप, आप ही खडा हुआ है
जीवनमयी कठोर भूमि पर स्वल्प मान है
और अधिक अज्ञान यहाँ है जो वितान है
ज्ञान तनु का क्षुद्र, भूमि म गडा हुआ है

जड, चेतन, सब आज मुझे अपने लगते है,
किरणो का उदभास रूप जो जो लाता है
अनुरजित उदगीथ उसी का अधर बन कर
होता है आकाश नए सपने जगते हैं
जिन का परिचय-भाव स्वरा म छा जाता है,
किरण किरण के रग हुए मन के छन छन कर

कठफोडे ने मार मार कर उन कीडा का 97
बाहर आज निकाल लिया आहार के लिए
जो तरु के अतस्थ शत्रु थे प्यार के लिए
शुकदपति ने एक वक्षकोटर भीडा को
तज कर कभी पसद किया, अपने नीडा को
अच्छी तरह सँवार कर नए भार के लिए
भली भाँति तैयार हुए उपहार के लिए
खग वसत के द्वार ताकते है पीडा को

आन वाले ग्रीष्म-दिवस तरु की छाया मे
बीतेंगे, हर रोज, वहा मेला उमडेगा,
नर नारी आवालवृद्ध चल कर आएँगे
हरियाली म आप, ठहर कर इस माया म
रमे रहगे और सीस पर से उखडेगा
चिता का ससार, विहग दल म गाएँगे

98 परस्पराश्रित प्यार भुवन म नर नारी का
वसुधरा-आकाश-स्रोत को छू लेता है,
इस प्रकार से अथ अनादि जोड देता है
उन प्राणो मे मौन जिह् अपनी बारी का
चिता सकुल ध्यान कभी हल्के भारी का
नैय विक्षेपक भेद नही देता खेता है
नाव अथ से पूण सिधु पर जा जेता है
उस का है उद्योग, हिरास नही हारी का

यही प्यार का बीज अकुरित हो कर मन मे
नए रूप आकार ग्रहण करता है जिस से
छाया अपरपार फैल कर छा जाती है
दिशा दिशा मे, देश देश मे, निखिल भुवन म
रग रग की और ययाचक जीवन किस स
कौन अथना चाह चुका—जगती गाती है

बदला दिन का रंग कुज के कुंज खिले हैं 99
उम गुलाब के आज, अभी कल जो उदास थे,
हरित पल्लवित प्राण सँभाल पास पास थे
अपनी मर्म-तरंग उठा कर मौन मिले हैं
चेतन जग से और हास के साथ हिले हैं
ने समीर से मान छोड़ कर, जो विकास थे
कल के ही ऐतिह्य, आज के अनायास थे
यत्नव, —प्राणो के प्रहार चुपचाप झिले हैं

बड़े भोर ही रश्मि उतर आई दुलराया
और कहा, क्या हानि तुम्हारी यदि ये काटे
अभी तुम्हारा अंग नही छोडते क्या हुआ
कटकभूषित रूप यही है जिस ने पाया
यह प्रसून उपहार, दूसरो के जो बॉटे
नही पडा, आकाश ने तुम्हे प्यार से छुआ

100 आज विश्व की भक्ति अनाश्रित भटक रही है
भूत काल की और भविष्य काल की जानी
अनजानी आवाज, प्राण के पट की छानी
उस को नित्य पुकार रही है खटक रही है
यह अजीब सी बात द्विधा से लटक रही है
यह चेतन की डोर पकड कर किस ने तानी,
किस न ऐसा काम किया कर्ता वह पानी
है अथवा नादान—प्रश्न ये पटक रही है

ये चिर पीडित प्रश्न धरा सडको, गलियो मे
हाट बाट म, प्रात निरंतर घूम रहे हैं
अभी अभी चुपचाप है अभी चिल्लाते हैं
सारा जग हैरान हो गया है कलिया म
कंपन है अविराम कहाँ स स्रोत बहे हैं
संदेहो के, लोग डूबते ही जाते हैं

सनिक कूट विशाल एक हम भी बनवा लें, 101
जितना यह प्रासाद बड़ा है, फिर हो जाएँ
खड़े दस पर छाँह, अनिच्छा हो—सो जाएँ,
किसी तरह भी बात करें मन को मनवा लें,
खाई से ही त्रास मिटेगा, हम खनवा लें,
मर जाएँ तो खैर—नहीं तो फिर वा जाएँ
हम रक्षा के रामबाण, चाहे खो जाएँ
सुरुचि, शील, सौजन्य—वितान नए तनवा लें

जिस से अपने प्राण न धरती से उड़ जाएँ
अमेरिका, इंग्लड, रूस जो आज बड़े हैं
हेतु यही है, आज विशाल कूट की छाया
के नीचे संसार समेट हैं मुड़ जाएँ
हम भी लख कर मोड़, अन्यथा व्यर्थ खड़े हैं
धरा विरोपित दंड सरीखे, क्या कुछ पाया

102 टूट रहे हैं शृंग पहाड़ों के उँचाइयाँ
ऊँचे चढ़ कर तंग आ चुकी हैं, अब गिर कर
नीचे का भी भेद देख लेने को फिर कर
लड़ लड़ म फल रही है वे लड़ाइयाँ
जो जीवन को लूट चुकी हैं, अब बड़ाइयाँ
बन बन कर फिर आँख आब म प्राय घिर कर
ले कर मोहक रूप काल के जल को तिर कर
छा जाती हैं मुग्ध मौन पा कर बधाइयाँ

ये लड़ाइयाँ मौन आज भी कहाँ हुई हैं—
अपनी अपनी राह बदल डाली नदियों ने,
मैदानों के रूप और के और हो गए,
जंगल में हैं धाम, दशाएँ यहाँ हुई हैं
कुछ की कुछ—आवाज सुनाई है सदियों ने
सुन सुन कर दिग्गज कहा के कहाँ खो गए

103

क्या हिलाइए हाथ, पाँव भी क्या पिराइए,
क्या उठाइए आँख, बात भी तो कोई हो,
ढूँढ रहे हैं लोग क्ला जैसे गोद हो—
कितना है आवेश, हेरिए तो हिराइए,
आरा तक वितर्क हुआ माथा चिराइए
कहीं बैठ चुपचाप, अगर जिह्वा सोई हो
तो क्या है उपचार, भारती जो रोई हो
ता अपना कर धैर्य कहीं कस थिराइए

परिवर्तन की बात—कई परिवर्तन हम भी
अपनी आँखों देख चुके हैं, परिवर्तन की
परिभाषा उपयुक्त बराबर हम न की है
कविता का हम मर्म जानते हैं हम कम भी
और वेश भी बूझ चुके हैं लय नर्तन की
माया से भी मुक्त रहे परिपाटी ली है

104

नीरव दीपालोक दृष्टि को खींच रहा है
अंधकार में बार बार दूसरा सहारा
कोई भी तो और नहीं है जीवन हारा
एकाकी अवसन्न पड़ा है सींच रहा है
जलद कौन कातार, तृषित से मीच रहा है
अपने लोचन लोल, गगन का कोई तारा
नहीं हमारे पास क्षीण किरणों की धारा
भेज रहा है श्रांत हृदय को भींच रहा है

एकाकीपन मौन मौन यह सिरा सिरा में
दौड़ रहा है व्यग्र रक्त बन कर क्या जाने
आकुलता किस ओर उठा कर ले जाएगी
इस तट से किस समय अग्नि भी आज गिरा में
उद्दीपन का कार्य छोड़ कर क्या कुछ लाने
तम से एकाकारप्राय है सुध आएगी ?

क्या हिलाइए हाथ, पाँव भी क्यों फिराइए, 103
क्या उठाइए आँख, बात भी तो कोई हो,
ढूढ रहे हैं लोग भला जैसे खोई हो—
कितना है आवेश, हेरिए तो हिराइए,
सारा तर्क वितर्क हुआ माथा फिराइए
वहीं बैठ चुपचाप, अगर जिह्वा सोई हो
तो क्या है उपचार, भारती जो रोई हो
तो अपना कर धर्य वहीं बस थिराइए

परिवर्तन की बात—कई परिवर्तन हम भी
अपनी आँखों देख चुके हैं, परिवर्तन की
परिभाषा उपयुक्त बराबर हम ने की है
कविता का हम मर्म जानते हैं हम कम भी
और वश भी सूझ चुके हैं लय नर्तन की
माया से भी मुक्त रहे परिपाटी ली है

104 नीरव दीपालोक दृष्टि को खींच रहा है
अंधकार मे बार बार, दूसरा सहारा
कोई भी तो और नहीं है जीवन हारा
एकाकी अवसन्न पड़ा है सींच रहा है
जलद कौन कातार, तृषित से भींच रहा है
अपने लोचन खोल, गगन का कोई तारा
नहीं हमारे पास क्षीण किरणों की धारा
भेज रहा है श्रांत हृदय को भींच रहा है

एकाकीपन मौन मौन यह सिरा सिरा मे
दौड़ रहा है व्यग्र रक्त बन कर क्या जाने
आकुलता किस ओर उठा कर ले जाएगी
इस तट से किस समय अग्नि भी आज गिरा मे
उद्दीपन का कार्य छोड़ कर क्या कुछ लाने
तम से एकाकारप्राय है सुध आएगी ?

105
सूख गए है लोर, आंख में पास नही है
अभी गुलाबी भोर, अंधेरा वायु-लहर मे
उमड रहा है वेग दिखाता हुआ, शहर मे
सन्नाटे का बोध बिछा है, त्रास नही हैं
फिर भी, फिर भी आज तुम्हारा हास नही है
जो नेत्रो की ज्योति बना था नए पहर मे
चिंता ही है शेष, दूर की घटा घहर मे
बिजली व्याकुल कौंध रही है भास नही है

मेरे प्रार्थी प्राण पवन पर लहराते है
और भाव एकाग्र तुम्हारे परिचित मुख को
देख रहे हैं ध्यान तुम्हारा खीच रहा है
उस अतीत की ओर जहा से स्वर आते हैं
जीवन का सदेश लिए मेरे इस सुख को
अत स्पदन नित्य रक्त से सीच रहा है

106
तुम को अगर सदेह चाहना हूँ सो कहते
कहते आ कर शब्द लाज से रुक जाते हैं
और निवेदन भाव अचानक चुक जाते हैं
क्या आखिर क्यो, प्राण वेग ये नीरव सहते
जाते हैं अविराम, प्रखर धारा मे बहते
रहते हैं दिनरात किसी दिन झुक जाते हैं
उन चरणो पर ध्यान चढा कर झुक जाते हैं
अपने पथ की ओर और अपने मे रहते

हैं खो खो कर भान लक्ष्य पर अपने उन्मुख
अजलियो के फूल कहा तक लिए जायेंगे,
कही चुन लिए और कही जा कर लगा दिया
अस्थिर है विश्वास श्वास को है इस का दुख
फिर भी तो उपहार प्राण के दिए जायेंगे
तुम ने जो अस्तित्व लिया जी को जगा दिया

जो भी दिन दो चार दिए तुम ने सब के सब 107
घायल थे, सुविशाल पंख भी टूट गए थे,
उन हसो के रान पडोसी छूट गए थे
किसी दिशा मे कौन पता देता कब के कब
मजिल अपनी देख बढे आगे, जब के जब
मार मार कर पंख चले तो फूट गए थ
अपनो से निरुपाय, वेग बल लूट गए थे
चलचलाव का झोंक रह गया था अब के अब

इन हसो से बात एक भी कहा न कर सका
जब सारा आकाश घेर कर ये छाए थे—
रूप, भाव, रस और प्राण तब बरस रहे थे
यहा प्रतीक्षाशील दशा म इह भर सका,
जब जब जग के स्वप्न लोचनो मे आए थे
तब तब मेरे प्राण अकेले तरस रहे थे

108 कितने ही थे शब्द, बिठाया, कहा—बडे हो
तुम्ही लोग यह बात और पहले पा जाता
तो क्या होता रूप, और हो कुछ आ जाता
जीवन मेरे पास आज तुम जहा खडे हो
यहा तुम्हे पहचान चाहिए तभी कडे हो
ममता का मृदु मर्म छिपाए यदि गा जाता
सभी तुम्हारे गान अमर तो वह छा जाता
बन कर सब का सत्य, उसी के लिए लडे हो

बोले मुझ से शब्द—यहा से वहा, वहा से
और वहा तक मौन तरंगित हम चलते है
यह अपार आकाश हमारा अपना घर है
हम जीवन के शूल फूल सब कहा कहा से
कहा कहा चुपचाप डालते है जलते है
तभी अदम्य प्रकाश विश्वजीवन का वर है

109

ये विशाल घरबार बराबर घेर रहे हैं
प्राणों को, जो मुक्त भाव ले भर आए हैं
एक एक से तालमेल रच कर छाए हैं
एक एक के भाव आँख से हेर रहे हैं,
उन को अपनी ओर पथ से फेर रहे हैं
अभी जिन्होंने देश-काल के रथ पाए हैं
और भविष्यत चित्र साँस में लिख लाए हैं
जो आकांक्षापूर्ण उन्हीं को टेर रहे हैं

ये विश्राम निवास अगर सचमुच निवास हैं
तो निवास के धाम और कितना रोकेंगे
फिर कितने दिनरात प्राण इन को मानेंगे
प्राणों के उच्छ्वास प्रसूनों के विकास हैं
विकसित सौरभ-सार बहेगा, जो टोकेंगे
उसे व्यथना आप एक दिन वे जानेंगे

110

मधुमक्खियाँ उड़ान भरा करती हैं दिन भर,
फूल फूल का कोष जतन से ले जाती हैं,
रचती हैं मधुचक्र कहीं जाते गाती हैं
संचय करने और गान से उनको छिन भर
कहाँ मिला अवकाश उजाला उन को तिन भर
जीवन का ही भव्य रूप है जब पाती हैं
अंधकार को पास, सार संग्रह लाती हैं
परिकोषों में डाल दखती हैं वे—दिन भर

गया आज का और देखना है कल को भी
रात समूहनिवास रहेगा और सबेरे
किरणों के ही साथ ये सभी उड़ जाएँगी
फूल, कली या पौध—राह में आए जो भी
सब का रस सानंद ग्रहण कर, कितने फेरे
दिन में कर चुपचाप, साँझ को जुड़ जाएँगी

मुझे एक भी ईंट असहृतप्राय कणा की 111
महति का विन्यास दिखाती है तप तप कर
कसे कैसे एकरूप वे सब छप छप कर
हो जाती हैं और शून्य व्यत्यस्त दशा की
कण-सत्ता निस्सार श्वास म तिग्म प्रणो की
प्रीति जगा कर मौन हुई, मन से खप खप कर
जब जब आया ताप तितिक्षा से नप नप कर
चला गया चुपचाप, कहानी रही रणो की

ईंट यहाँ असख्य भवन में लग जाती हैं
एक एक की मात, स्थपति के हाथ चिनाई
करते करते सोच समझ कर जड दते है,
अभिलाषाएँ और दस पर जग जाती हैं
रूप और प्रतिरूप बनाव सिंगार—बिनाई
करके अगीकार राह अपनी लेते है

112 खडा आमडा, बौर लिए निष्पत्र, अकेला
कपिश सुहाने पोरदार ये बौर सलोने
झूम रहे है, वायु-लहर म परिमल बोने
का आकुल उद्योग कर रहे है यह मेला
जो वसत-उल्लास सँभाले ह, खुल खेला
है, विभिन्न रस स्वाद गध म इन समोने
को अधीर आकाश झुका है स्वर स्वर होने
लगे और के और आज लहरो का रेला

एक एक के प्राण परस कर दिग्दिगत म
फैल रहा है और कही से कोयल कू ऊ
कू ऊ कू ऊ बोल कान अपनाए लेती
है, रसाल के भाव बस गए हैं वसत म
हवा उधर से मौन इधर अग जग को छू छू
कर उस पार उछाल गई बन गद्द पहेली

दोपहरी है कूज रहे हैं उधर कपोती 113
और कपोत अधीर चोंच से चोंच मिलाते
चुग्गा ले कर सानुरोध चुपचाप खिलाते
एक दूसरे को, न कभी चकार कुछ होती
है उनका उपहार वृत्ति प्राणों में बोती
है जीवन के बीज सटाने पग हिलाते
बढ़ते हैं इस ओर और उस ओर, जिलाते
हैं जगती के स्वप्न स्वप्न हैं मन के मोती

ग्रीवा प्राय मोड़ मोड़ कर मिला मिला कर
हिलते डुलते और काल का मौन चाल को
देख देख कर भाव भर हैं इन को चिन्ता
कभी किसी की रंच भर नहीं यहाँ जिला कर
जी कर जीवन बिता रहे हैं किसी हाल को
अपना लिया हुलास यही है घड़ियाँ गिनता

114 सुविकसितनिभार - निपीतवारि - वनराजी
मुकुलच्छाय प्रफुल्ल-लता वीरुध तरु-ललिता
श्रावण - धारासार - शोषिता ईरण चलिता
वल्ली वर्णाकार - प्रसून शोभिता भ्राजी
मेघश्याम - दिगन्त - वलय में बहुधा गाजी
अचिरप्रभा वनान्तभूमि मिहिरिवामकलिता
निनादमान नद विघ्न, नदी - चादर उच्छलिता,
वेश नवीन नवीन दिवा रजनी ने साजी

अपनी ध्वनि की धार सहज से खग मृग जलचर
जीवन के आघात झेल कर जीवमान हैं
हस्ति - महिष - वाराह उल्लसित घूम रहे हैं
वारिद का निर्घोष श्रवण कर वसुधा गल कर
शिथिलबंध निरुपाय पड़ी है, विहग गान हैं
जल के तल पर और विटप सब झूम रहे हैं

115 नव दल लिए शिरीष खिला है कठिन ताप मे,
किसी तरह जब ताप टला तो सुरभि- साँस से
रजनी की चुपचाप रगों को प्रेम फाँस से
बाँध दिया, सताप गया, इस नई छाप मे
ऐसा कुछ अव्यक्त व्यक्त हो गया आप मे
जग भर का अपनाव बनाए, गई गाँस से
दुनिया का उद्वेग गया— अवशिष्ट पाँस से
जड ने पाया खाद्य, आस नप गई नाप मे

जीवन के जयगान पराजय मे भी दूने
होगे, मन का खेद आप ही उतर जायगा,
दिवस रहे या रात रहे यात्री को इस से
क्या— सारा आकाश पख से अपने छूने
विहग अग्रज्ञ उडान भरेंगे, मनुज पायगा
पद पद पर सदेश नया मिल कर जिस तिस से

116 गए दिना के साथ कहाँ क्या मैं न त्यागा,
मेरा जी ही बात जानता है यह पूरी,
कहाँ कहाँ थे स्वप्न और कितनी थी दूरी
उन से मेरी लाग लाग भय से भर जागा,
जीवन के दिन रात एक कर दिए, न माँगा
कभी किसी से प्राप्य, मौन सी थी मजबूरी
जिस ने सारी दौडधूप हर बार अधूरी
छुडवा दी है प्राण, आज का भी दिन भागा,

इस से अपने आप कुछ नही मैं ने पाया
अधकार मे याद आ रही हैं ये बातें,
जिन से कोई काम किसी दिन जग मे अपना
नही बना, आवाज खो गई बन कर छाया
ले कर दीपालोक दिखाएँगी क्या रातें
स्मृति से भी तो छूट गया देखा जो सपना

जीवन जब तक शेष रहेगा तब तक धारा 117
इसी तरह निर्बाध बहेगी, जीत-हार का
अभिनय भी दिन रात रहेगा, घृणा प्यार का
रंग हृदय पर छाप छोड़ कर पथ पर न्यारा
रूप रचेगा रात्रि दिवस के चक्कर द्वारा
आकांक्षाएँ वेश बदल कर नए भार का
प्रतिशिर पर आरोप करेंगी, कहीं सार का
पता न होगा और जगत मे मारा मारा

मौन फिरेगा फूल, उसे कोई पूछेगा,
इस का कुछ विश्वास नही पूछेगा कोई
क्या, उस से क्या अर्थ मिलेगा, कहीं खिलेगा
कहीं प्रसन्न विकास करेगा, किस को देगा
स्वप्नों के सकेत सत्य की आभा खोई
अधकार के सिधु बीच क्या थान मिलेगा